



प्रिय पाठकवृन्द ! आज तक जितने प्राचीन ग्रन्थकार, निबन्धकार, क्राकार और अनुवादकों ने जो अपनी २ रचना द्वारा अपनी दिष्टि पाटव दर्शाये हैं उनकी रचनाओं का एक विशेष कारण अवश्य गया गया है। क्योंकि “कारणं विनामन्दोपि न प्रवर्तते” यद्यपि उन प्रगाथ विद्वानों के गम्भीर और विद्वत्पूर्ण लेखों तथा उत्तमोत्तम रचनाओं से और इस सुच्छातितुच्छानुवाद से पृथ्वी और आकाश वैसा अन्तर है क्योंकि मैं ही उन महापुरुषों के सन्मुख “कोटिस्तु कीटायते” के सदृश हूँ तो मेरी कृति का भी वैसाही अथवा उस से भी अधिक अन्तरित होना माघार्थ है। दूसरा कारण एक और भी है कि यह मेरा प्रथम साहस है कि “पिपीलिकासुखचित्चन्द्रबिम्बम्” इस वाक्य को चरितार्थ किया है। तो भी आशा करता हूँ कि सुजन पाठकवृन्द इस अनुवाद को भी इसकी कोई विशेष आवश्यकता समझकर और नहीं तो मेरी मयभीत आशा को भविष्य के लिए निरुत्तर बनाने ही के हेतु अपनायेंगे।

इस ग्रन्थ के अनुवाद का हेतु यह है कि सन् १८२१ ईस्वी में जब कोलायत तक रेल का मार्ग निर्मित हो गया और यह भी सूचना हो चुकी कि इस वर्ष की कार्तिकी पूर्णिमा से पहिले ही यात्रियों के सुभीते के लिये कोलायत तक रेल जाने लग जायगी तो मुझे जहांतक स्मरण आता है कि आषाढ़ थावण के महीनों में कभी हमारे जीवनाधार भी १०८ भी अन्नदाताजी ने कोलायत के विषय में—यह स्थान कैसे और कबसे मसिद्ध हुआ तथा इसका नाम कोलायत क्यों रखा गया एवं इसका क्या माहात्म्य है और इसमें राखी प्रमाण क्या है इत्यादि प्रश्न उठाये। उपरोक्त प्रश्न से उस समय मेरा कोई सम्बन्ध नहीं था, ये प्रश्न राजपण्डितों से हुए थे, जिसका उत्तर राजपण्डित

भी और उग उचग्यत्र में गया था ! सो देखने से मैं ब
परन्तु इस प्रश्न को गुनेते ही मेरी उत्कण्ठा हुई कि मैं भ
का अन्वेषण करूं, यद्यपि मैं ज्योतिषी हूं, मेरा
यथा कि पुराण भर्मशास्त्र आदि गहन और अ
के किनारे भी जागऊं, इसी चिन्ता में निमग्न हो
तरकाल ही गोम्पागी श्रीतुलसीदासजी का एक दोहा
गया " नहिं विद्या नहिं बाहुबल, नहिं गांठी का दाग । मे
पतंग की, पति राखहु श्रीराम " इसके स्मरण आते ही मेरे म
शान्ति के साथ एक आशा का संचार हो गया तदनन्तर एक
वर परिणित यमुनादासजी श्रीलालगढ़ में मिले और उनके ह
चीन और हस्तलिखित खुले पत्रों की एक पुस्तिका दीस पड़ी
विषय में पूछा तो उन्होंने कपिलायतनमाहात्म्य उसका नाम बताया
१०८ अन्नदातारजी ने अमुकामुक प्रश्न किये हैं उन्हीं के उत्तर
केलिये यह पुस्तक लाया हूं, यह उत्तर दिया, तदनन्तर उ
को एक बार आघोषान्त पढ़ने के लिये मैंने उन से प्रार्थना की और
र्थना स्वीकार करके उन्होंने पुस्तक देदिया पुस्तक पढ़वाने
हुई कि इस पुस्तक का सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद करूं
सर्वसाधारण को श्रीकैलायतजी का विषय पूर्णतया अवगत हो
अपने दो एक मित्रों की सम्मति भी ली तो उन्होंने हिन्
वाद के वास्ते पूरा जोर दिया और मैंने लिखना भी आरम्भ
जब लगभग दो अध्याय तक लिख चुका तो एक रोज उसका
हो कर रहा था इतने में मेरे परमहितैषी आयुर्वेदभूषण पणि
जीवनरामजी हृष का अकस्मात् शुभागमन होगया और उन्हें
कर पूछा और इसकी संमस्त कथा समझाने पर दुबारा उन
को देखा तथा अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रगट कर तावन्मात्र ही

वाद की समालोचना उन्होंने की और स्थल २ में कुछ रदबदल करने की भी अपनी सम्मति प्रकट की और वैसा ही मैंने कर भी दिया फिर उन्होंने संस्कृत टीका लिखने की भी सम्मति दी तब से जब २ संयोगवश वह मिलते थे तब तब इस का समाचार पृथक् और मेरी सुस्ती पर मुझे बहुत लज्जित किया करते थे तो भी इस ग्रन्थ की परि समाप्ति में बहुत विलम्ब हुआ और मित्रों ने समय २ पर अतिशय भर्त्सना की तो भी मेरे सहचर और बालसखा आलस्यदेव ने कुछ परवाह न कर अपनी ही गति से मुझे चलाता रहा एवं “दिनभर चले अढ़ाई कोश” की कहावत को मैं चरितार्थ करता हुआ इसी विक्रमी सम्बत् १९८१ के श्रावण शुक्ल एकादशी सोमवार के प्रातःकाल में इस पुस्तक की समाप्ति लगभग दो वर्षों में करसका और समाप्त होते ही मेरे परमप्रेमभाजन बन्धुवर श्रीकृष्णदासजी हर्ष ने इसको छपवा देने के लिए प्रेरणा की और उक्त मेरे परमहितैषी श्रीमान् आयुर्वेदमूषण्ण पण्डित जीवनरामजी हर्ष ने अपने श्री केवल जीवनानन्द प्रेस में छपाने की भी अनुमति दे दी। मैं उक्त सज्जनों की कृपा पूर्ण सम्मति से प्रेरित एवं सदुत्साहित होकर उक्त कार्य का आरंभ वा उसके आद्योपान्त सम्पादन कर सकने में साहसवान हुआ हूँ यस यही मेरा यत्नतय है।

यह भी आशा करता हूँ कि सभी परमोदार सज्जन इसी प्रकार अपनी महत्वपूर्ण सात्विकवृत्ति से मेरी इस लुब्ध भेंट को धार्मिक एवं विद्याप्रेम के नाते अपनाकर कृतार्थ करेंगे। किमधिकम्बिज्ञेयिविति।

श्रीकानेर,

सं० १९८१ कार्तिक शुक्ल २१

विष्णुदत्तः ।

पं यमुनादासजी तथा गोम्बामों पण्डित भी नर्ममिहन्तानजी ने हि
 भी और उम उषमय में गया था / मो देगने में मैं बंविता हो न
 परन्तु इस प्रश्न का गुनन है मेरी उन्नतता हुई कि मैं भी इन वि
 का अन्वेषण करूँ, यन्त्रि में ज्योतिषि है, मेरा आधिष्ठा
 तथा कि पुण्य प्रमृग्य आदि गहन और अल्प म्द्र
 के किनारे भी जामकूँ, इसी विन्ना में निमग्न हो रहा था
 तत्काल ही गोम्बामी श्रीतुलसीदासजी का एक दोटा म्मरत इ
 गया " नदि विद्या नदि बाहुवन, नदि गांधी का दाम । मों सो पति
 पतंग की, पति रासहु थीराम " इसके म्मरग्य आने ही मेरे मन में अर्प
 शान्ति के साथ एक आशा का संचार हो गया तदनन्तर एक रोज मित्र
 वर पण्डित यमुनादासजी श्रीलालगढ़ में मिले और उनके हाथ में प्रा
 चीन और हस्तलिखित खुले पत्रों की एक पुस्तिका दीस पड़ी मैंने उसके
 विषय में पूछा तो उन्होंने कपिलायतनमाहात्म्य उनका नाम बताया और श्री
 १०८ अन्नदाताजी ने अमुकामुक प्रश्न किये हैं उन्हीं के उत्तर हूँ देने
 के लिये यह पुस्तक लाया हूँ, यह उत्तर दिया, तदनन्तर उस पुस्तक
 को एक बार आधोपान्त पढ़ने के लिये मैंने उसे प्रार्थना की और मेरी प्रा
 र्थना स्वीकार करके उन्होंने पुस्तक देदिया पुस्तक पढ़वाने पर इच्छा
 हुई कि इस पुस्तक का सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद करूँ जिस में
 सर्वसाधारण को श्रीकोलायतजी का विषय पूर्णतया अवगत होजाय और
 अपने दो एक मित्रों की सम्मति भी ली तो उन्होंने हिन्दी अनु
 वाद के वास्ते पूरा जोर दिया और मैंने लिखना भी आरम्भ करदिया
 जब लगभग दो अध्याय तक लिख चुका तो एक रोज उसका अनुवाद
 हो कर रहा था इतने में मेरे परमहितैषी आयुर्वेदभूषण
 जीवनरामजी हंप का अरुस्मात् शुभागमन है

तर पूछा और इसकी समस्त कथा

ने देखा तथा अपनी हार्दिक

शुद्धाऽशुद्धपङ्क्तयः।



अशुद्धयः	शुद्धयः	शृष्ट	पङ्क्ति
महात्म्य	माहात्म्य		
तमोमतम्	तमोत्तमम्	१	१३
किञ्चिद्दोष्यम्	किञ्चिद्दोष्यम्	१	१८
श्लोका	श्लोकाः	४	५
वशिष्ठ	वसिष्ठ	५	३
"	"	७	७
यदुःखं	यदुःखं	"	१०
मा	मा	२०	१७
साहसै	साहसैः	२१	५
स	स	२२	४
धो	धो	"	७
रु	रु	"	१२
मेकरम्भि	मेरुम्भि	२४	१२
गृहानान्तु	गृहाणान्तु	५८	३
गृहायान्ति	गृहायान्ति	६१	३
प्राप्तानन्तरम्	प्राप्त्यनन्तरम्	६१	१६
स्तत्काल एव	स्तत्काल एव	६२	२
सघात कारिणि	सङ्घात कारिणि	"	२४
महापाठ	महापाठक	७०	१०
महांश्वासौ	महान्तश्चे	७२	१३
नागृहाना	नागृहाना	"	१५
		७३	१२

शुद्धाऽशुद्धपङ्क्तयः।



अशुद्धयः	शुद्धयः	शृष्ट	पङ्क्ति
महात्म्य	माहात्म्य		
तमोमतम्	तमोत्तमम्	१	१३
किञ्चिद्दोष्यम्	किञ्चिद्दोष्यम्	१	१८
श्लोका	श्लोकाः	४	५
वशिष्ठ	वसिष्ठ	५	३
"	"	७	७
यदुःखं	यदुःखं	"	१०
मा	मा	२०	१७
साहसै	साहसैः	२१	५
स	स	२२	४
धो	धो	"	७
रु	रु	"	१२
मेकरम्भि	मेकरम्भि	२४	१८
गृहानान्तु	गृहाणान्तु	५८	३
गृहायान्ति	गृहापान्ति	६१	३
प्राप्तानन्तरम्	प्राप्त्यनन्तरम्	६१	१६
स्तरकल एव	स्तरकाल एव	६२	८
सघात कारिणि	सङ्घात कारिणि	"	२४
महापाक	महापातक	७०	१०
महांश्वासी	महान्तश्वाते	७२	१३
नागृहाना	नामगृहाना	"	१५
		७३	१८

अशुद्धयः

शुद्धयः

पृष्ठ

पंक्ति

अमन्ता	अमलाः	११८	१६
धर्मपत्न्या	धर्मपत्न्यां	१२२	२२
तीर्थफलानुक्तं	तीर्थफलानुक्तं	१२४	४
संस्तुवतः	संस्तुवतः	१२८	१
ध्वान्तनाशन	ध्वान्तनाशनः	१२८	२
प्रसादत	प्रसादतो	१२८	५
हृदयान्धकारोनेष्ट	हृदयान्धकारोनेष्टः	१२८	५
जिसको शास्त्रोमेंलिखाहैवह इसमें “ वह ” नहीं चाहिए		१२६	१३
स्वाश	रवास	१३३	२३
विपरूप	विषयरूप	१३८	४
योगिन	योगिजन	”	४
मनङ्काः	मनश्शङ्का	१४२	७
शुभदेवने	शुभुदेवने	१४३	१०
तत्राशु	तस्याशु	१४३	१४
प्रतिपथ	प्रतिपथ	”	१६
कोटि	कोटि	१४४	१५

पृष्ठ १०६ श्लोक ४० में “ पादाधानः श्लिष्टपादः ” यह “ पादाधानश्चिष्टपादः ” ऐसा होना चाहिए, जिसका अर्थ रकाव (पांवडे) में पैर लगाया हुआ ।

परिचित जयराम शास्त्री,

सँ० प्र० अध्यापक,

श्री इंगरकालेज, बकानेर ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ स्कन्द पुराणान्तर्गत रेवासखण्डात्
कपिलायतनतीर्थमाहात्म्यं

लिख्यते



॥ सत्रतावन्मंगलाचरणम् ॥

महेशानं महेशानतनूजं मनुजार्चितम् ।

नमामि विघ्नहर्तारं कर्तारं सर्वसम्पदाम् ॥ १ ॥

श्रीकपिलायतनमाहात्म्यरचयिता पुराणकर्ता व्यासदेवः म
गणेशं स्तौति महेशानमिति—

महेशानतनूजं महेशानरश्मिस्तम्बतनूजं महादेवात्
मनुजार्चितमनुजैरर्चितम्पूजितं विघ्नहर्तारं विघ्नविनाशनं सर्वसम्प
कर्तारं महेशानं गणेशं नमामि नमस्करोमि ॥ १ ॥

श्री कपिलायतन माहात्म्य के रचयिता पुराणकर्ता व्यास
“ प्रथम गणेशजी की स्तुति करते हैं ”—

महेशान शंकरजी के पुत्र, मनुष्यों से पूजित, विघ्नों के हर्ता
सर्वसम्पत्तियों के कर्ता महेशान गणेशजी को नमस्कार करता है ॥

(गूढ उवाच)

गंगा माहात्म्यं मतुलं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ।

श्रुत्वा-प्रहर्षमगमद्गस्तपोमुनिस्ततमः ॥ २ ॥

सूतश्चोक्तवादीन् स्वद्योतृन्प्रतिवदति यन्— मुनिम
मुनिधेयो ऽगस्त्यस्सर्वतीर्थोत्तमोत्तममनुपमं गंगामाहात्म्यं
प्रहर्षमगमन् ॥ २ ॥

सूतजी शौनकादि ऋषियों से कहते हैं कि मुनि
अगस्त्यमुनि पूर्वकथा में अनुगम और सब तीर्थों से उत्तम
माहात्म्य को स्कन्ददेव से सुनकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २ ॥

पुनः पप्रच्छ विनयात्तनयं प्रणयान्वित
शूलिनस्सर्वतत्त्वज्ञं स्कन्दं देवारिकन्दनम् ॥

प्रणयान्वितो विनयाव्रजो भूतोऽगस्त्यसर्वतत्त्वज्ञं सर्व
देवारिकन्दनं शूलिनरञ्जरस्य तनयं स्कन्दाविनयायुनः पप्रच्छ
अगस्त्यजी ने विनीत भाव के साथ नम्र होकर सर्व
जाननेवाले तथा देवारिकन्दन (तारकामुर के बंध करनेवाले)
के पुत्र स्कन्ददेव से पुनः प्रश्न किया ॥ ३ ॥

भगवन्सर्वधर्मज्ञ ! सर्वज्ञसुत ! मत्प्रभो !
गंगामाहात्म्यकथनात्पावितोऽहं न संशयः ॥

अभिन्यसे पूर्वाद्धेस्य पदचतुष्टयं स्कन्दस्य समं
भगवन्तित्यादितो मत्प्रभो ! पर्यन्तम् उत्तराद्धेनागस्त्यः किं
कथयति यत्तत्र गंगामाहात्म्यकथनादहं पावितः पा
मि न संशयः ॥ ४ ॥

अगस्त्यजी ने कहा कि हे भगवन् ! हे सब धर्म के
वाले ! हे शंकरजी के पुत्र ! और मेरे प्रभु ! आपके गंगा म
के कथन ने मैं पवित्र होगया इस में शन्देह नही है ॥ ४ ॥

गंगा तु सर्वलोकेषु वेदेषु महामते ॥
प्रसिद्धिमागता निर्गम सर्व्वे जानन्ति मत्तमाः ॥

हे महामते ! गंगा तु सर्व लोकेषु वेदेषु वेदचतुष्टयेषु च
अप्यन्यनिर्गमनेन सर्व्वे सत्तमा निपुणा नित्यं निरन्तरजानन्ति ॥ ५ ॥

श्रीकपिलायतनतीर्थमाहात्म्यं ।

हे महामते ! गंगा तो सब लोकों में और बंदों में प्रसिद्ध
हुकी है यह सभी सत्पुरुष जानते हैं ॥ ५ ॥

आर्य्यी बालकगोपालगंगामाहात्म्यमुत्तमम् ॥
प्रकटं सुरसेनानीर्जागर्ति भुवनत्रये ॥ ६ ॥

हे सुरसेनानी ! आर्य्यीबालकगोपालं त्रियमारभ्यबाल
गोपालपर्य्यन्तम् । उद्योगगंगामाहात्म्यं भुवनत्रयेप्रकटं प्रत्यक्षं जग
त्रियोबालका गोपालाश्च सर्वे जानन्तीतिभावः अत्र गोपालशब्द
आभीर वाचकः स्वात्मादिति भाषायां । आभीरस्तु शुद्धवर्णोभवति
पृतेऽपि जानन्ति किमन्येषामिति ॥ ६ ॥

हे स्कन्ददेव ! इस त्रिभुवन में स्त्री, बालक तथा गोपाल पर्य्य
मभी इस उत्तम गंगा माहात्म्य को प्रत्यक्षरूप से जानते हैं । य
इस बात को सभी जानते हैं कि शास्त्रों में त्रियों को, बालकों
और शूद्रों को किसी तीर्थ या नदी के माहात्म्य जानने का अधिकार
नहीं है, तथापि इस कथन से गंगा माहात्म्य की प्रधानता विशेष
से सूचित हो रही है ॥ ६ ॥

अनन्तचरणाम्भोजप्रसूताया भवच्छिद्रः ॥

रिक्ततुङ्गतरंगायाः श्रीकपर्दे कर्षार्दिनः ॥ ७ ॥

महापापौषविध्वंसपटीयस्याः परान्तप ॥

कोन जानाति गंगायामाहात्म्यम्परमाद्भुतम् ॥

हे परान्तप ! कर्षार्दिनश्चक्रस्य श्रीकपर्दे जटाजूटे रिज्जन्तीय
तुङ्गतरङ्गाय रिक्ततुङ्गतरङ्गा, तस्याः अनन्तचरणाम्भोजप्रसूता
महापापौषविध्वंसपटीयस्याः भवच्छिद्रोगङ्गायाः परमाद्भुतम्परमा
करमाहात्म्यं को न जानाति ॥ ७, ८ ॥

हे देव ! जन्म ७ मरण के चक्र के चरणों में तूने
 भोग्य नहीं दिया है। कर्मों के फल के, कर्मों के फल के
 मरण के, मरण के फल के, मरण के फल के, मरण के फल के
 ही कर्म ही मरण है ॥ ७, ८ ॥

कामुना भोग्युविच्छासि किञ्चिद्भोग्यं मनोपयम् ॥

मनोपयं किञ्चिद्भोग्यं देव ! ममभि पामादुपयम् ॥ ६ ॥

हे देव ! कामुना मनोपयं देव ! ममभि पामादुपयं
 मनोपयं किञ्चिद्भोग्यं भोग्यु निच्छासि ॥ ६ ॥

हे देव ! इस समय मनोपयं देव ! ममभि पामादुपयं
 मनोपयं किञ्चिद्भोग्यं भोग्यु निच्छासि ॥ ६ ॥

किन्तु भीषं भवेत्तत्र सर्वैर्नार्थकलप्रदम् ॥

जनैस्सर्वैरपिज्ञानं त्व्यादयैर्ज्ञातमेव हि ॥ १० ॥

सर्वपापहरं पुण्यं सर्वयज्ञकलप्रदम् ॥

सर्वत्र सुखदं देव ! भोगिभोगप्रदं शुचि ॥ ११ ॥

सकामानान्तधान्गुणं कामनापरिपूरकम् ॥

निष्कामानाम्पुनर्यिद्वन् ! ज्ञान मुत्पाद्य मुक्तिदम् ॥ १२ ॥

स्वर्गदं सुष्टुबुद्धीनां पापिनां पापनाशनम् ॥

सद्यः प्रत्यक्षकृष्णोके मर्त्यानां स्थूल चक्षुषाम् ॥ १३ ॥

प्रेतयोनिगतानां यन्मुक्तिर्दं भवसागरे ॥

द्विष्य लोक प्रदं दिव्यं दिव्यमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १४ ॥

द्विष्यदेवाधिष्ठितं तत्तीर्थं तीर्थवरं परम् ॥

यथा कथाऽपि क्रियया मोचकं शोकनाशकम् ॥ १५ ॥

तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात्सुरसत्तम ॥

नाज्ञातं विद्यते किञ्चित्सर्वज्ञाननिधेस्तव ॥ १६ ॥

(सरलार्थादिमे श्लोकाः)

हे देव ! हे विद्वन् ! हे सुरसत्तम ! इस संसार में ऐसा कोई तीर्थ हो जो सब तीर्थों का फल देनेवाला हो, मनुष्यों से अज्ञात हो, आप सदृश महात्मा ही। उसको जानते हो, वह सब पापों का हारक तथा पवित्र और सब यज्ञों का फल देनेवाला हो, सकाम सेवन करनेवाले मनुष्यों की कामनाओं को परिपूर्ण करता हो, और निष्काम सेवन करनेवालों को ज्ञान देकर मुक्त करता हो, सुबुद्धियों को स्वर्ग देता हो, पापियों के पाप नाश करता हो, और स्थूल दृष्टि से देखनेवाले मनुष्यों को इस लोक में सत्काल परिचय देनेवाला हो तथा प्रेतयेनि में गये मनुष्य को भी भवसागर से मुक्त करनेवाला एवं दिव्य लोक देनेवाला, दिव्य महात्म्य से युक्त, और दिव्य देवताओं से सेवित हो और सर्व तीर्थों में श्रेष्ठ हो एवं जिस किसी क्रिया से भी संसार बन्धन का मोचक और शोकनाशक हो उस तीर्थ को आपके मुख से सुनना चाहता हूँ। आप सम्पूर्ण ज्ञान के निधि हैं आप से कोई वस्तु अज्ञात नहीं है ॥ १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६ ॥

यथास्ति मयि ते पूर्णा करुणा करुणानिधे !, ॥

प्रवृहि प्रविणाशाय, महासेन ! महेनसाम् ॥ १७ ॥

हे ! करुणानिधे ! महासेन ! यदि, ते तव, मयि विषये, पूर्णाकरुणास्ति, तदा महेनसां महापापानां प्रविणाशाय, मरूदे, कथय, गंगामाहात्म्यमिति, पूर्वश्लोकान्बन्धः ॥ १७ ॥

श्रीकपिलाथनननीधमादात्म्यं ।

हे करुणानिधि ! मद्रागेन ! यदि आपत्ती मेरे ऊपर पूर्ण कर
तो मद्रागों के बिनाग के हेतु गंगामादात्म्य को कहिये ॥ १७ ॥

(गूत उवाच)

ति प्रभेन संहृष्टः पार्वतीनिन्दनस्मदा H

याच वचनं चारु प्रहस्य श्रूयतामिति ॥ १८ ॥

गूतः शौनकादिन्द्रिययन्त्रि यदेवमस्योदिनप्रभेन स हृष्टः
ताम्रासः पार्वतीनिन्दनस्तद्युतस्मिन्कालेप्रहस्य दिदृश्य श्रूयतामिति
वचनमुवाच ॥ १८ ॥

गूतजी ने शौनकादिक आचार्यों से कहा, कि इस तरह
नजी के प्रश्न को सुन पार्वतीनिन्दन मन्दजी प्रसन्न हुये और
उन्हीं (मुने) इस रुचिर वचन को बोले ॥ १८ ॥

त ! जगद्धितं पृष्टं तद्विद्वैकमना भव ॥

याम्पदं तव प्रीत्यानान्यधानत्कथंचन ॥ १९ ॥

हे मुने ! त्वया जगद्धितं पृष्टं तत्त्वभास्काराद्विद्वैकमना-
निर्णयः, तव प्रीत्यापदं वक्ष्यामि तत्कथंचनान्यधानेति ॥ १९ ॥

हे मुनि ! तुम सावधान होकर मुनो तुमने जो संगीत के दित
से प्रश्न किया है उसका उत्तर तुम्हारे प्रेम के कारण जो
बढ़ कभी अन्यथा नहीं हो सकता ॥ १९ ॥

न्यं यन्न प्रकारयन्त्रिणि चन्द्रविद्राम्मनम् ॥

तापि यत्किम ललितं तव गीताङ्गशेखर ॥ २० ॥

हे वरुण ! प्रिय यादिन् ! यद्वैक्य गोपनीयमनु नम्र प्रकारय-
न्त्रिणि शम्भनमस्ति तस्यापि तव गीतान् ललितं गुन्दरी यथाग्यान्त्रिधा
वक्ष्यामि ॥ २० ॥

हे वशंवद ! जो गोप्य वस्तु है उसको कभी प्रकाश नहीं करना चाहिये यह वेद जाननेवालों का सम्प्रदाय है, तौ भी तुम्हारे सौजन्यवश इन्दरता से उस गुप्त कथा को कहता हूं ॥ २० ॥

संभवेदिहसंप्रीतिर्यक्तुः श्रोतरिसत्तमे ॥

अरुन्धतीधवस्येव जानकीपतिभूपतौ ॥ २१ ॥

इहास्मिन् गुप्तकथासंभाषणे जानकीपतिभूपतौ श्रीरामचन्द्रे, अरुन्धतीधवस्य वसिष्ठस्य इव श्रोतरि सत्तमे वक्तुस्संप्रीतिः संभवेत् कांक्षितास्ति ॥ २१ ॥

इस गुप्त कथा के संभाषण में श्रोता और वक्ता का प्रेम वैसाही ॥ चाहिये जैसा राजा श्रीरामचन्द्रजी में वसिष्ठजी का था ॥ २१ ॥

यं भागवतीसृष्टिर्यस्याः पारोनविद्यते ॥

अ कुत्रापि यद्गुहा तत्तद्रत्नधरा धरा ॥ २२ ॥

इयं भागवती सृष्टिः यस्याः पारः अन्तं न विद्यते, अस्यां सृष्टौ पृथ्वी यत्रकुत्रापि तत्तद्रत्नमाण्यरत्नधरास्ति नानि तानि रत्नानि ति तत्तद्रत्नधरेति, ॥ २२ ॥

यह वैष्णवी सृष्टि है जिसका अन्त नहीं है इस सृष्टि में पृथ्वी तहां जिन जिन रत्नों को धारण करती है उनके नाम आगे दिए हैं ॥ २२ ॥

नापि नारीरत्नानि नररत्नानि कुत्रचित् ॥

चिद्वाजिरत्नानि गजरत्नानि कुत्रचित् ॥ २३ ॥

अथियां कुत्रापि नारीरत्नानि मीरत्नानि सन्ति कुत्रापि नररत्नानि कुत्रचित्वाजिरत्नानि अश्वरत्नानि सन्ति कुत्रचित्गजरत्नानि ॥ २३ ॥

प्र. १० - यदि $\sin A = \frac{3}{4}$ हो, तो $\cos A$ का मान ज्ञात करें।
 हल - $\sin^2 A + \cos^2 A = 1$
 $\left(\frac{3}{4}\right)^2 + \cos^2 A = 1$
 $\frac{9}{16} + \cos^2 A = 1$
 $\cos^2 A = 1 - \frac{9}{16}$
 $\cos^2 A = \frac{16-9}{16}$
 $\cos^2 A = \frac{7}{16}$
 $\cos A = \pm \sqrt{\frac{7}{16}}$
 $\cos A = \pm \frac{\sqrt{7}}{4}$

भरावज्जुमत्तयां तीर्थेभ्यो नमिहि ॥

मसं हं ममप्रवक्ष्यामि मर्षितुं न शक्यते ॥ २४ ॥

बदुग्नायाः पमर्षा हि मर्षार्थमिहानि मन्त्रि ज्ञतः कर्तारं
 भेष्टादनिर्भेष्टं तर्षमिहाने मे सुखमद्वैतमवकाशयामि ॥ २४ ॥

इस बहुगुणा पृथ्वी में तीर्थ रत्न भी हैं इस कारण भेड़ में भी
भेड़ तीर्थरत्नों को घुम में कहता है ॥ २४ ॥

प्रयागादीनि तीर्थानि रत्नभूषानि भूयते ॥

सोऽप्यर्षीह परं रत्नं तर्हिमेकं प्रशस्यते ॥ २५ ॥

इह भूतानि जगतीनानि प्रयागादीनि तीर्थानि रत्नभूतानि सन्ति तेषु
अपि परशुनृपे रत्नमेकंतीर्थं प्रशस्यते प्रशस्तमस्ति यद्भवेदव्यति ॥ २५ ॥

इस पृथ्वी में प्रयाग आदि तीर्थ तीर्थों में स्नान है उनमें भी परम उत्कृष्ट एक तीर्थ स्नान है जो प्रागे कहेंगे ॥ २५ ॥

पञ्चाशत्कोटिचिस्तारं भूमण्डलामिदंस्मृतम् ॥

तत्रापि लोकेविस्तीर्णन्तम एव प्रवर्त्तते ॥ २६ ॥

इह भूमण्डलं पञ्चाशत्कोटिविस्तारमर्थ्यात्पञ्चाशत्कोटि योजनाय-
मस्ति, एतदर्थं श्रीमद्भागवतस्य पञ्चमस्कन्धे भूगोल वर्णनं द्रष्टव्यम् ।
तत्रापि एतावद्विस्तृते लोकेषु विस्तीर्णं अधिकं तम अन्धकार एव
प्रवर्तते ॥ २६ ॥

इस भूमण्डल का पचास कोटि योजन का विस्तार है, उसमें भी तैयार के अधिक भाग में अन्धकार ही है पौराणिक भूगोल का वर्णन श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध ने पूर्ण सत्य से व्यासजी ने किया है ॥ २६ ॥

लोके प्रकाशो बहुलो यत्र सृष्टिः प्रवर्तिता ॥

तत्रापि महतीभूमिर्महास्वर्णमयी स्थिता ॥ २७ ॥

लोके यत्र सृष्टिः प्रवर्तिता यावन्मात्रं सृष्टिर्वर्तते । तत्र सूर्योच्चन्द्र-
मसोनिरन्तर्गमनेन बहुतः प्रकाशोऽस्ति तत्रापि प्रकाशमूलावपि महती
भूमिर्महास्वर्णमयी स्थिताऽस्ति ॥ २७ ॥

संसार में जहांतक सृष्टि है वहां तक पूर्ण प्रकाश है उसमें भी
अधिकतम भूमि भाग अनेक रत्नों से भरा है, जिसको महास्वर्णमयी
भूमि कहते हैं ॥ २७ ॥

तत्र मध्यप्रदेशेषु सप्तद्वीपवती मही ॥

तेषु द्वीपेषु च महान् जम्बूद्वीपो विशिष्यते ॥ २८ ॥

तत्र तस्यां महास्वर्णमय्याम्भूमौ मध्यप्रदेशेषु सप्तद्वीपवती
सप्तद्वीपविष्टाना मयास्ति तेषु द्वीपेषु सुमहान् जम्बूद्वीपो विशिष्यते
सप्तद्वीपेषु जम्बूद्वीपो विशेष इति ॥ २८ ॥

उस स्वर्णमयी भूमि के मध्यप्रदेशों में द्वीपगतक सात विभागों
में पृथ्वी विभक्त है, उन विभागों में सब से प्रधान और बृहदाकार
जम्बूद्वीप है ॥ २८ ॥

तद्द्वीपे नवखण्डानि भारतादीनि सत्तम ॥

भारतं पुण्यमेतेषु कर्मक्षेत्रं यतस्सृजम् ॥ २९ ॥

हे सत्तम ! तज्जम्बूद्वीपे भारतादीनि नव खण्डानि वर्तन्ते एतेषु
नवसु खण्डेषु भारतं यतः पुण्यमविव्रमस्ति अतः कर्मक्षेत्रं सृजम्
कथितम् ॥ २९ ॥

हे भुनि सत्तम ! उस जम्बूद्वीप में भी भारतादि नवखंड हैं उन
नवों खण्डों में भारत सब से पवित्र है इसलिये कर्मक्षेत्र कहा
गया है ॥ २९ ॥

भवन्ति तत्र तीर्थानि नाना पापहराणि वै ॥

सोकोपकार सिद्ध्यर्थं निहितानि महात्मनिः ॥ ३० ॥

तत्र कर्मक्षेत्रे सोकोपकारिणो महात्मनि विहितानि नाना
इमानि तीर्थानि भवन्ति वै अपर पाप दूषको ज्ञेयम् ॥ ३० ॥

उप कर्मक्षेत्र में सोकोपकार के निमित्त महात्माओं के कहे
अनेक पापहाक तीर्थ हैं ॥ ३० ॥

कानिचिद्गिरिरूपाणि सरोरूपाणि कानिचिन् ॥

हृदमसवरूपाणि नदीरूपाणि कानिचिन् ॥ ३१ ॥

वनारण्यरूपाणि पुरीरूपाणि कानिचिन् ॥

पुराणस्मृतिसंगीतमाहात्म्यानि महामुने ॥ ३२ ॥

हे महामुने ! पुराणस्मृतिसंगीतमाहात्म्यानि कानिचिर्गणं
गिरिरूपाणि कानिचित्सरोरूपाणि कानिचिद्हृदमसवरूपा
कानिचिन्नदीरूपाणि कानिचिन्नारण्यरूपाणि पुरीरूपाणि
सन्ति ॥ ३१, ३२ ॥

हे महामुनि ! पुराणों में और स्मृतियों में जिन २ तीर्थों
महात्म्य वर्णन किया गया है उन में कितने तो गिरिपर्वतों के २
में हैं, कितने सरोवरों के रूप में हैं, कितने झरनों के रूप में हैं, कितने
नदी के रूप में हैं, कितने वन तथा अरण्य के रूप में हैं और
कितने पुरियों के रूप में हैं ॥ ३१, ३२ ॥

सप्रापिरत्नभूतानि विरलान्येव भूतले ॥

महामाहात्म्ययुक्तानि सद्यः पाप हराणि वै ॥ ३३ ॥

- | | |
|------------------------------------|--|
| १) हिमालयी, कंलाशगिरी प्रभृति । | (५) कुन्दावन, नदीवन प्रभृति । |
| २) पुष्कर, कपिल प्रभृति । | (६) दण्डकारण्य, नैमिषारण्य प्रभृति । |
| ३) हरद्वार । | (७) कराला, वैष्णवाय, जगन्नाथ इत्यादि |
| ४) गंगा, यमुना, सरस्वती प्रभृति । | |

तत्र तेष्वपि पूर्वोक्तानेकरूपतीर्थेषु भूतलेमहामाहात्म्ययुक्तानि सद्यः
पापहराणि रत्नभूतानि विरलान्येव तीर्थानि सन्ति अत्रापि वै पाद
पूरकोव्ययः ॥ ३३ ॥

उन ऊपर लिखे हुये अनेक रूप तीर्थों में महामाहात्म्य से युक्त
सद्वत्तल पापों के नाश करनेवाले और रत्न स्वरूप इस भूतल में
कोई २ तीर्थ हैं ॥ ३३ ॥

गंगा च यमुनाचैव तथा प्राची सरस्वती ॥

नर्मदा च पयोप्णी च कृष्णा वेणी सचेदिका ॥ ३४ ॥

सप्तपुष्पों गयशिरः कुरुक्षेत्रं त्रिपुष्करम् ॥

सेतुबन्धेश्वरादीनि तीर्थरत्नानि सुव्रत ॥ ३५ ॥

हे सुव्रत ! गंगाद्या एता नद्यस्तथा, अयोध्या, मथुरा, माया,
फाशी, कांची, अवन्तिकापुरी, द्वारावती एताः सप्तपूष्पः गयशिरो
गया, कुरुक्षेत्रं, त्रिपुष्करम् सेतुबन्धेश्वरादीनि च तीर्थेषु तीर्थ रत्नानि
स्युः ॥ ३४, ३५ ॥

हे सुव्रत ! नदी रूप तीर्थों में गंगा, यमुना, प्राची, सरस्वती,
नर्मदा, पयोप्णी, कृष्णा, और वेदिका ; एवं पुरी रूप तीर्थों में
अयोध्या, मथुरा, माया, फाशी, कांची, अवन्तिकापुरी, द्वारावतीपुरी
तथा गया एवं कुरुक्षेत्र, त्रिपुष्कर, सेतुबन्धेश्वर (रामेश्वर) ये सब
तीर्थ रत्न हैं ॥ ३४, ३५ ॥

एषु सत्येषु तीर्थेषु स्नानदानजपादिभिः ॥

भवन्ति प्रत्यया लोके पथाकामं पथा व्रतम् ॥ ३६ ॥

(स्पष्टार्थोपम्)—

इन सब तीर्थों में जैसी कामना तथा व्रत से स्नान, दान और
जपादि किये जाते हैं, तदनुकूल फल प्राप्ति होने से विश्वास होता है ॥

एषु सर्वेषु तीर्थेषु सर्वेषां पापहानयः ॥

सर्वेश्वरः सर्वभूतः सर्वतीर्थमणोवर्मी ॥ ३१ ॥

एषु सर्वेषु तीर्थेषु सर्वेषां पापहानयः पावनः सर्व तीर्थेषु सर्वेश्वरः सर्वभूतः सर्वतीर्थमणोवर्मी ॥ ३१ ॥

इन सब तीर्थों में सब के पाप को नाश करने के निमित्त सब तीर्थों के स्वामी सर्वेश्वर, सर्वभूत, सर्व तीर्थमणोवर्मी हैं ॥ ३१ ॥

तथापि सर्वतीर्थेषु सारतम्यं प्रयत्नते ॥

वियेषेन महाभाग कलांशदिप्रभेदतः ॥ ३२ ॥

हे महाभाग ! तथापि सर्वतीर्थेषु विवेकेन कलांशदिप्रभेदतः सारतम्यं न्यूनाधिरयं भवतीति ॥ ३२ ॥

हे महाभाग ! यद्यपि सर्वतीर्थमय सर्वेश्वर सब तीर्थों में बिराजमान हैं, तो भी विचार दृष्टि से देखने पर परमेश्वर के कला और अंशों के भेद से सब तीर्थों में फलों का न्यूनाधिक है ॥ ३२ ॥

इदं तीर्थमयं वर्षं भारतं न्यपदिश्यते ॥

कर्मक्षेत्रं परंपुरयं सर्वत्र सुखदायकम् ॥ ३३ ॥

इदं भारतं वर्षं तीर्थमयं परंपुरयं सर्वत्र सुखदायकम् कर्मक्षेत्रं न्यपदिश्यते ॥ ३३ ॥

इस तीर्थमय परम पवित्र सन जगह सुख देनेवाले भारतवर्ष को कर्मक्षेत्र कहा जाता है ॥ ३३ ॥

तत्र जन्माप्यमानुष्यं योनरः सर्वसिद्धिदम् ॥

नास्नाति सर्वतीर्थेषु तेनात्मा यंचितो ध्रुवम् ॥ ४० ॥

तत्र कर्मक्षेत्रे योनरः सर्वसिद्धिदं मानुष्यं जन्माप्य जन्म-
संप्राप्य सर्वतांभेषु ना स्नाति तेन नरेण ध्रुवं निश्चयेनात्मा वंचितः
स आत्मानं वंचितवानिति ॥ ४० ॥

उस कर्मक्षेत्र में सर्व सिद्धि दायक मनुष्य जन्म को पाकर जिसने
सब तीर्थों में स्नान नहीं किया उसने आत्मा को धोसा दिया ॥ ४० ॥

षड्दानादिकं कर्म निर्धनैर्नैव साध्यते ॥

तीर्थ स्नानादिकं पुण्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितैः ॥ ४१ ॥

देहमात्रावशेषैश्च निर्धनैरपि साध्यते ॥

तस्मात्तीर्थं वरं लोके सर्वपुण्येषु मानद ॥ ४२ ॥

हे मानद ! निर्धनैर्जनैर्यज्ञदानादिकं नैव साध्यते । तीर्थ स्नानादिकं
पुण्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितैर्देहमात्रावशेषैर्निर्धनैरपि साध्यते तस्मात्लोके
सर्वपुण्येषु तीर्थं वरम् ॥ ४१, ४२ ॥

हे मुनि ! धनरहित दरिद्रमनुष्यों से यज्ञ दानादिक कर्म का साधन
नहीं हो सकता क्योंकि इस में प्रचुर धन की आवश्यकता रहती है और
तीर्थस्नानादिक पुण्यकार्य को भक्ति तथा श्रद्धा जिसको होती है
यह महादरिद्र मनुष्य जिसको देहमात्र ही शेष धन है वह भी साधन
कर सकता है, इसलिये इस संसार में सभी पुण्यों में तीर्थ ही उत्तम
है क्योंकि यह सब के वास्ते सुलभ है ॥ ४१, ४२ ॥

सदा तीर्थपरैर्माज्यं सर्वलोकै रित् स्फुटम् ॥

तीर्थस्नानसमं पुण्यं न भूतं न भविष्यति ॥ ४३ ॥

सर्व लोकैस्सर्वजनैस्सदा तीर्थपरैर्माज्यम् भवितव्यमिति स्फुटं
स्पष्टं भवति तीर्थ स्नानसमं पुण्यं न भूतं न भविष्यतीति ॥ ४३ ॥

इसलिये निश्चय होता है कि सभीमनुष्योंसे सदा तीर्थसेवी होना चाहिये
क्योंकि तीर्थस्नानकेसमान पुण्य और कोई वस्तु ही नहुआ है, नहोगा ॥ ४३ ॥

एषु सर्वेषु तीर्थेषु सर्वेषां पापहानये ॥

सर्वेश्वरः सर्वरूपः सर्वतीर्थमयोवमी ॥ ३७ ॥

एषु सर्वेषु तीर्थेषु सर्वेषां पापहानये पापनाशाय सर्वतीर्थमयः सर्वरूपः सर्वेश्वरः सर्वरूपः सर्वेश्वरः परमेश्वरः सदा विराजमान रहते हैं ॥ ३७ ॥

इन सब तीर्थों में सब के पाप को नाश करने के लिये सब तीर्थों का स्वरूप सर्वस्वरूप सर्वेश्वर, परमेश्वर, सदा विराजमान रहते हैं ॥ ३७ ॥

तथापि सर्वतीर्थेषु तारतम्यं प्रवर्तते ॥

विवेकेन महाभाग कलांशादिप्रभेदतः ॥ ३८ ॥

हे महाभाग ! तथापि सर्वतीर्थेषु विवेकेन कलांशादिप्रभेदतः तारतम्यं न्यूनाधिक्यं प्रवर्तते ॥ ३८ ॥

हे महाभाग ! यद्यपि सर्वतीर्थमय सर्वेश्वर सब तीर्थों में विराजमान है, तौ भी विचार दृष्टि से देखने पर परमेश्वर के कला और अंगों के भेद से सब तीर्थों में फलों का न्यूनाधिक है ॥ ३८ ॥

इदं तीर्थमयं वर्षं भारतं व्यपदिश्यते ॥

कर्मक्षेत्रं परंपुरयं सर्वत्र सुखदायकम् ॥ ३९ ॥

इदं भारतं वर्षं तीर्थमयं परंपुरयं सर्वत्र सुखदायकम् कर्मक्षेत्रं व्यपदिश्यते ॥ ३९ ॥

इस तीर्थमय परम पवित्र सब जगह सुख देनेवाले भारतवर्ष को कर्मक्षेत्र कहा जाता है ॥ ३९ ॥

ननु जगत्प्राप्तमिदं गोत्रं सर्वसिद्धिदम् ॥

तत्र कर्मक्षेत्रे योनरः सर्वसिद्धिदं मानुष्यं जन्माप्य जन्म-
संमाप्य सर्वार्थेषु नास्नाति तेन नरेण ध्रुवं निश्चयेनात्मा वंचितः
स आत्मानं वंचितवानिति ॥ ४० ॥

उस कर्मक्षेत्र में सर्व सिद्धि दायक मनुष्य जन्म को पाकर जिसने
सब तीर्थों में स्नान नहीं किया उसने आत्मा को धोसा दिया ॥ ४० ॥

पद्मदानादिकं कर्म निर्धनैर्नैव साध्यते ॥

तीर्थ स्नानादिकं पुण्यं भक्तिधृद्धासमन्वितैः ॥ ४१ ॥

देहमात्रावशेषैश्च निर्धनैरपि साध्यते ॥

तस्मात्तीर्थं वरं लोके सर्वपुण्येषु मानद ॥ ४२ ॥

हे मानद ! निर्धनैर्जनैर्यज्ञदानादिकं नैव साध्यते । तीर्थ स्नानादिकं
पुण्यं भक्तिधृद्धासमन्वितैर्देहमात्रावशेषैर्निर्धनैरपि साध्यते तस्मात्तीर्थं
सर्वपुण्येषु तीर्थं वरम् ॥ ४१, ४२ ॥

हे मुनि ! धनरहित दरिद्रमनुष्यों से यज्ञ दानादिक कर्म का साधन
नहीं हो सकता क्योंकि इस में प्रचुर धन की आवश्यकता रहती है और
तीर्थस्नानादिक पुण्यकार्य को भक्ति तथा दृढ़ा जिसको होती है
यह महादरिद्र मनुष्य जिसको देहमात्र ही शेष धन है वह भी साधन
कर सकता है, इसलिये इस संसार में सभी पुण्यों में तीर्थ ही उत्तम
है क्योंकि यह सब के वास्ते सुलभ है ॥ ४१, ४२ ॥

सदा तीर्थपरैर्भाष्यं सर्वलोकं रिह स्फुटम् ॥

तीर्थस्नानसमं पुण्यं न भूतं न भविष्यति ॥ ४३ ॥

सर्वं लोकं सर्वजनैस्सदा तीर्थपरैर्भाष्यन् भवितव्यमितीह स्फुटं
स्पष्टं भवति तीर्थ स्नानसमं पुण्यं न भूतं न भविष्यतीति ॥ ४३ ॥

इसलिये निश्चय होता है कि सभीमनुष्योंको सदा तीर्थसे ही होना चाहिये
क्योंकि तीर्थगमनकेसमान पुण्य और कोई मज्ञादि नहुआ है, नहोगा ॥ ४३ ॥

तीर्थं यात्रा महापुण्यं पूज्यैः पूज्यगैः कृता ॥

लामशादिभिरुपैद्य राजर्षिप्रवरैः पुनः ॥ ४४ ॥

पूज्यैः पूज्यगैः मार्चीनातिमार्चीनैर्लामशादिभिर्महापुण्यं तीर्थं यात्रा कृता ॥ ४४ ॥

मार्चीनातिमार्चीन लोगछादि महापुण्यों ने और राजर्षिप्रवर विधानि-
प्रादि ने तीर्थ यात्रा को महापुण्य बनाया है ॥ ४४ ॥

तस्मात्कर्ममयि प्राप्य भूमिं भारतमञ्जिकाम् ॥

यैः स्नानं सर्वतीर्थेषु तस्य जन्म कृतार्थकम् ॥ ४५ ॥

(स्पष्टम्)—

इसलिये भारतभूमि जैमी कर्मभूमि पाकर तिसने सब तीर्थों
में स्नान किया उसका जन्म सार्थक है ॥ ४५ ॥

तीर्थं तीर्थं प्रतिस्नातुं कथं शक्यं तपोधन ॥

तस्माद्रहस्यं यत्तीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ ४६ ॥

रत्नभूतेषु तीर्थेषु रत्नभूतं यदुच्यते ॥

तत्तेहं संप्रवक्ष्यामि त्वमिहैकमनाः शृणु ॥ ४७ ॥

हे तपोधन ! तीर्थं तीर्थं प्रतिस्नातुं मनुष्यैः कथं शक्यं तस्मात्सर्व
तीर्थफलप्रदं रत्नभूतेषु तीर्थेषु रत्नभूतं रहस्यं गोप्यं यत्तीर्थं तदहं ते
बुभुक्षे संप्रवक्ष्यामि त्वमिहैकमनाः शृणु ॥ ४६, ४७ ॥

हे तपोधन ! सभी तीर्थोंमें स्नान करलेना मनुष्य शकितसे वास है इस
लिये सभी तीर्थोंके फल देनेवाला, रत्न तीर्थों में भी परमरत्न और गोप्य जो
तीर्थकहा गया है उसको मैं तुमसे कहता हूँ सावधान होकर सुनो ॥ ४६, ४७ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्पादे कपिलापतननाहात्म्ये
तीर्थदर्शनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।



द्वितीयाध्यायकथारंभः ।



(सूत उवाच)

एतन्निशम्य वचनं स्कन्दस्य कलशोद्भवः ॥

भूयोविज्ञापयामास मुदा परमया युतः ॥ १ ॥

सूतशौनकादीन् कथयति यत् कलशोद्भवोऽगस्त्यस्स्कन्दस्यै
तद्वचनं निशम्य श्रुत्वा परमयात्यन्तया मुदा हर्षेण युतः भूयः
पुनर्विज्ञापयामास ॥ १ ॥

सूतजी शौनकादि ऋषियों से बोले कि अगस्त्यजी ने स्कन्दजी
के यह वचन सुनकर परम हर्ष के साथ फिर निवेदन किया ॥ १ ॥

स्वामिंस्ते वचनादत्र महती मे प्रसन्नता ॥

संजाता मनसोऽत्यर्थं वारिणश्शरदोयथा ॥ २ ॥

हे स्वामिन् ! तेतववचनादत्र मे मनसः शरदः शरद्वतुतोवारिणो
जलस्य यथा प्रसन्नता भवति तथा अत्यर्थं अतिशयं प्रसन्नता जाता ॥ २ ॥

हे स्वामिन् ! जैसे शरत्काल से जल की प्रसन्नता होती है
वैसे आपके वचनों से मेरे मन को अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई है ॥
(यहाँ प्रसन्नता का तात्पर्य स्वच्छता से है) ॥ २ ॥

भगवन्तं पुनः प्रष्टुं समीहे हरनन्दन ॥

भूयो ममैनं सन्देहमपा कुरु दयानिषे ॥ ३ ॥

हे हरनन्दन ! पुनर्भगवन्तं प्रष्टुं समीहे दयानिषे ! भूयो ममैनं
सन्देहं अपाकुरु ॥ ३ ॥

हे हरनन्दन ! आपसे पुनः पथ करने की इच्छा करता हूँ, हे
दयानिषे ! एक बार और मेरे सन्देह को दूर कीजिये ॥ ३ ॥

यत्त्वयोक्तम्महातीर्थं गुह्यं गुह्यं महीतले ॥

तस्य तीर्थस्य यन्नाम तन्मे यद् विदाम्बर ॥ ४ ॥

हे विदाम्बर ! महीतले गुह्यं गुह्यं यन्महातीर्थं त्वया उक्तम् तस्य तीर्थस्य यन्नाम तन्मे यद् ॥ ४ ॥

हे जानियों में श्रेष्ठ ! इस पृथ्वीतल में गोप्यगोप्य अर्थात् अत्यन्त गुप्त महातीर्थ जो आपने कहा है उस तीर्थ का जो नाम है वह मुझे बतलाइये ॥ ४ ॥

किन्तत्तीर्थं किम्प्रमाणं किम्फलं किंसमीपिगम् ॥

किम्माहात्म्यं किमाधिक्यं किंदेशस्थं किमात्मकम् ॥ ५ ॥

(स्पष्टार्थोपम्)

यद् कौन तीर्थ है, उसका क्या प्रमाण है, क्या फल है, किसके समीप है, क्या माहात्म्य है, उस तीर्थ में क्या विशेषता है, किस देश में है और उसका कैसा रूप है ? ॥ ५ ॥

एतत्सर्वं समाचक्ष्व विचक्षणशिरोमणे ॥

नृणां निरश्रेयसार्थाय तव सूक्तं प्रवर्तते ॥ ६ ॥

विचक्षणविद्वान्सस्तेषां शिरसु मणिरिव तत्सम्बुद्धौ हे विचक्षणशिरोमणे ! एतत्सर्वं समाचक्ष्व कथय यतस्तव सूक्तं (सुष्ठुशोभनं उक्तं कथनं सूक्तं भवति) तव सुवचनं नृणामनुप्यायां निरश्रेयसार्थाय निरश्रेयकल्याणलाभाय प्रवर्तते भवति ॥ ६ ॥

हे जानिशिरोमणि ! ये सब विषय पूर्ण रीति से बतलाइये, क्योंकि आरक्ष सुकथन मनुजों के परम कल्याण के लिये है ॥ ६ ॥

(पुन उवाच)

इति पृष्टः स भगवान्मुनिना कुम्भपांनिना ॥

उवाच सुरमेनानीः श्मश्रुश्च गनस्मयः ॥ ७ ॥

इत्थेवं कुम्भयोनिना कुम्भो घटो योनिर्जन्मस्थानं यस्य स तेन
मुनिना अगस्त्येन पृष्टः स गतस्मयो निस्पृहो भगवान् सुराणां
सेनानी स्कन्दः स्मयन् त्वचितोद्रेकं प्रकटयन्नवोवाच चित्तोद्रेकः
स्मयोमद इत्यमरः ॥ ७ ॥

सूतजी बोले कि जब कुम्भयोनि अगस्त्य मुनि ने इसप्रकार
प्रश्न किया तो निरहंकारी भगवान् स्कन्दजी ने अपने हृदय में जो
तर्षों के भेद भरे थे उनको प्रकट करते हुवे कहा ॥ ७ ॥

शृणुविप्रेन्द्र यदयामि गोप्यं तीर्थमनुत्तमम् ॥

यत्नाम श्रुतिमात्रेण पापराशिः प्रलीयते ॥ ८ ॥

हे विप्रेन्द्र ! अनुत्तम गोप्य तीर्थं यदयामि शृणु । यत्नामेति
स्पष्टम् ॥ ८ ॥

हे विप्रेन्द्र ! एक उत्तम और गोप्य तीर्थ को कहता हूँ, सुनो !
जिसके नाम श्रवण करने से पापराशि नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

अस्ति देशस्त विपुलस्तमुद्रो बालुकामयः ॥

महिष्ठो मेदिनीपृष्ठे निसर्गादेव पावनः ॥ ९ ॥

अस्तिस मेदिनीपृष्ठे पृथ्वीपृष्ठे महिष्ठः अतिशयेन महान् महिष्ठः
पूज्यतमः निसर्गास्वभावादेव पावनः पवित्रः बालुकामयः समुद्रः
विपुलो देशः ॥ ९ ॥

पृथ्वी पर अतिशय पूज्य स्वभाव से ही पवित्र बालुकामय
समुद्र एक विपुल (बहुत बड़ा) प्रदेश है ॥ ९ ॥

यद्योत्तमो नाम मुनिर्यालुकामयसागरे ॥

चिरकालं यत्तारोर्ध्वस्तपस्वीत्यन्तपोधनः ॥ १० ॥

यत्र देशे बालुकामयसागरे तपोधन उत्तमो नाम मुनिश्चिरकालं
न्दीर्घं तपसा न्तप उच्चैश्चकार ॥ १० ॥

जिम देश के बालुकागम माया में तपश्चरित उचक मुनि ने बहुत दिनों तक कठिन तपस्या की ॥ १० ॥

तस्मैषं तप्यमानस्य तपस्वीयं गृधुधरम् ॥

धुन्धुनीममहर्दित्यायगुलाश्रममन्त्रिणी ॥ ११ ॥

गुन्धुधर तीर्थ तप्यमानस्य तप्योन्नेकस्याश्रममन्त्रिणी महा दैत्ये धुन्धुनीममभव ॥ ११ ॥

इस प्रकार अत्यन्त सेव्यमाध्य कठिन तप को तपते हुये उचक मुनि के आश्रम के पास में धुन्धु नाम का एक महादैत्य उत्पन्न हुवा ॥ ११ ॥

बालुकान्तर्हितरशयच्छेतेऽसौ कलुषाशयः ॥

तपोविम्वकरो नित्यं मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ १२ ॥

भावितात्मनां भावितः साक्षारकार्णवतः आत्मा येः ते भावितात्मान्तेषां मुनीनां नित्यं तपोविम्वकरः अतौ कलुषाशयः पापात्मा महादैत्यः बालुकान्तर्हितः बालुकान्तर्गतरशयः निरन्तरं शेते ॥ १२ ॥

आत्मदर्शी मुनियों की तपस्या में निरन्तर विम्व करताहुवा बड़ पापात्मा धुन्धु बालुका में छिपकर सदा सोया रहता था ॥ १२ ॥

कदाचिन्मुखतो वह्निं वायुं चापिसमुत्सृजन् ॥

उत्तंकस्य तपोविम्वं चक्रे स दुष्टदानवः ॥ १३ ॥

स दुष्टदानवः मुम्वतः कदाचिद्बह्निमग्निं कदाचिद्वायुं समुत्सृजन् द्विरनुत्तंकस्य तपोविम्वं चक्रे ॥ १३ ॥

(१) राक्षस मायावी होते हैं, उनके वारंते मुख से अग्नि उत्पन्न करना अथवा प्रचल वायु उत्पन्न करना कोई कठिन समस्या नहीं है । कल्पीकृतमायव के लक्ष्मणजी के साथ मेघनाद ने मुझ करने हुए अपनी सारी सेना को लक्ष्मण के ही रूप बनावाया था । दुर्गा में रक्तबीज के देह से जो रक्तपान होत था उसके पक्षेक किट से असंख्य दातव उत्पन्न हो जाते थे ।

वह दुष्ट दानव मुख से कभी अग्नि को कभी वायु को वमन करता हुआ उत्तंकमुनि की तपस्या में विमग्न करता रहता था ॥ १३ ॥

इत्थन्तमपकुर्वाणं दृष्ट्वा विप्रः स तापसः ॥
कथमेव भवेद्ब्रह्मचिन्तयामास चेतासि ॥ १४ ॥

इत्थं पूर्वोक्तामिव गनं वायूद्विरणादिव्यापारेणापकुर्वाणं तदैत्यं दृष्ट्वा
एव दैत्यः कथं बध्यो भवेदिति स तापसो विप्रः उत्तंकश्चेतसि चिन्तयामास
तद्ब्रह्म विचारयामास ॥ १४ ॥

इस प्रकार मुख से अग्नि और वायु को उतरात्र करके अपकार करनेवाले दैत्य को देख कर वह तपस्वी ब्राह्मण उत्तंकमुनि अपने मन में विचारने लगे कि किस प्रकार से वह मारा जाय ॥ १४ ॥

स्वतः सामर्थ्ययुक्तोऽपि प्रलयानलसन्निभः ॥
क्षमावान् स्वतपोभंगमिषा ना कुरुत स्वयम् ॥ १५ ॥

क्रोधसमये प्रलयानलसन्निभः प्रलयामिसमः क्षमावान् शान्तचेताः
स मुनिः स्वतः सामर्थ्ययुक्तोऽपि दैत्यवधकरणे स्वयं समर्थोऽपि
स्वतपोभंगमिषा भवेन स्वयं न अकुरुत दैत्यवधाय स्वयं नोद्यत ।
अत्र स्वयम् इति स्थले ध्रुवमपि पाठः ॥ १५ ॥

क्रोध के समय में प्रलयकाल के अग्नि के सदृश उस क्षमावान् मुनि ने निज के सामर्थ्य होते हुए भी अपनी तपस्या के भंग देने के भय से स्वयं उसका वध नहीं किया ॥ १५ ॥

ततो बुद्ध्या विचार्य सौ नृपं कुबलयारवकम् ॥
धुंधोर्वधाय धम्मार्त्मा गृहे गत्वा व्याजिज्ञपत् ॥ १६ ॥

ततस्तदनन्तरमसौ महात्मा धुंधोर्वधाय कुबलयारवकं कुबलयारव-
नामानं नृपं बुद्ध्या विचार्य तस्य गृहे गत्वा व्यजिज्ञपत् विज्ञापयामास ॥ १६ ॥

इस के अनन्तर उस महात्मा ने धुंधुनामक दैत्य को बध करने
 व अपनी बुद्धि में राजा कुबलयाश्व को विचारकर उनके घर
 हर उनसे कहा ॥ १६ ॥

तजन्मे क्लिप्तां कर्म क्लिष्टिद्यत्ते निवेदये ॥
 तपस्विनिदयां कृत्वा तपो विघ्नं विनाशय ॥ १७ ॥

हे राजन् ! क्लिष्टकर्म क्लिप्तां यत्ते तुभ्यं निवेदये तपस्विनि
 दये दयां कृत्वा तपो विघ्नं विनाशय ॥ १७ ॥

हे राजन् ! जिस काम को आपसे निवेदन करता हूँ उसको
 जिये । काम यह है कि तपस्वियों के ऊपर दया करके तप के विघ्न
 विनाश कीजिये ॥ १७ ॥

तजानो हि महाराज विष्णोरंशसमुद्भवाः ॥
 तधाच श्रूयते लोके नाविष्णुः पृथिवीपतिः ॥ १८ ॥

हे महाराज ! राजानः विष्णोरंशसमुद्भवा भवन्ति तथाच पृथ्वीपतिः
 विष्णुः ना गनुष्यः अर्थान्मनुष्य रूपो विष्णुरिति लोके श्रूयते ॥ १८ ॥

हे महाराज ! राजा लोग विष्णुमगवान के अंश से उत्पन्न
 हैं । और संसार में भी यही कथन मसिद्ध है ॥ १८ ॥

शुःसं ममराजेन्द्र श्रूयतां श्रुतिदानतः ॥
 शरोपकारकरणे यूपं धात्रा विनिर्मिताः ॥ १९ ॥

हे राजेन्द्र ! ममशुःसं तच्छ्रुतिदानतः श्रूयतां यूपं शरोपकार
 के धात्रा मरुता विनिर्मिताः ॥ १९ ॥

हे राजेन्द्र ! मेरा जो दुःख है सो कान देकर सुनिये, आपलोग
 शरोपकार के धात्रा से निर्माण किये गये हैं ॥ १९ ॥

धुन्धुर्नाम महादुष्टो मधुसूनुर्महाबलः ।

नित्यं रजस्तु स्वपिति मदाश्रमसमीपगः ॥ २० ॥

महाबली भीषणपराक्रमो महादुष्टो मधुसूनुः मधुनामको दानवः पूर्वमभूत् यद्वधे भगवता विष्णुनाकारि येन तदारभ्य भगवतो मधुसूदन इति भगवान् मधुसूदनेन नाम्ना प्रसिद्धिगतः तत्कथाविस्तारं पुराणेषु प्रसिद्धं तस्य मधोः पुत्रः महादुष्टः धुन्धुर्नामकः मदाश्रमसमीपगः मदीया-श्रमनिकटे बसन् नित्यं रजस्तु बालुकास्वन्तर्हितः स्वपिति शेते ॥ २० ॥

एक मधुनामक दैत्य था (जिस मधु को विष्णु भगवान ने बध किया जिस कारण भगवान का नाम मधुसूदन पड़ा जिस की कथा पुराणों में प्रसिद्ध है) जिसका पुत्र महाबली और महादुष्ट धुन्धु नाम का दैत्य है जो मेरे आश्रम के निकट ही बालुकाओं में छिपकर सदा सोता है ॥ २० ॥

स मे विभ्रं करोत्युच्चैः सदा पर्वणि पर्वणि ।

तं ध्वंसय महाबाहो ! विष्णोरंशोऽसि भूनसे ॥ २१ ॥

स धुन्धुर्मे नम पर्वणि पर्वणि सदा उच्चैर्विभ्रमुपद्रवं करोति हे महाबाहो ! तं ध्वंसय नाशय यतस्त्वं मूलते विष्णोरंशोऽसि ॥ २१ ॥

वह धुन्धु नामक दानव मेरे मत्प्रेक्ष पर्वों में अत्यन्त विभ्र करता है । हे महाबाहु ! तुम पृथ्वी में विष्णु भगवान् का अंश हो इसलिये उसका नाश करो ॥ २१ ॥

स एव मुक्तो नृपतिर्व्रक्ष्यत्यः सत्यसंगरः ॥

साहाय्यं मनसा कर्तुं ब्राह्मणार्थं समुद्यतः ॥ २२ ॥

सत्यसंगरः सत्यव्रतः ब्रह्मण्यः ब्रह्मनिष्ठः ब्राह्मणप्रिय इति वा स नृपतिः राजा एवं उक्तः उत्तंकमुनिना कथितो ब्राह्मणार्थं साहाय्यं कर्तुं मनसा समुद्यतः ॥ २२ ॥

सत्य का पालन करनेवाले ब्राह्मणों के भक्त उस राजा (कुवलयारव) उत्तंक मुनि ने जब पैगा पटा तब उत्तंक मुनि की सहायता के लिये राजा ने मनमा मंदिर दिया ॥ २२ ॥

एकविंशतिसाहस्रैः संख्याकैः पुत्रैर्युनः ॥
मत्वा धुंधुं जघानाशु विष्णुर्वीर्योपवृंहितः ॥ २३ ॥

विष्णुवीर्योपवृंहितः विष्णुतुल्यपद्मकमः विष्णोरंशत्वादिति ।
राजा स्वर्कभिरेकविंशतिमहस्रैः संख्याकैः पुत्रैर्युन उत्तंकमुनेराश्रमसमीप
त्वा आशु सीधे धुंधुं जघान ॥ २३ ॥

विष्णुभगवान के तुल्यबली उस राजा ने अपने इसीस हजार
बच्चों के साथ उत्तंक मुनि के आश्रम के समीप जाकर उस धुंधु दानव
को मार डाला ॥ २३ ॥

धुंधोर्मुखाग्निना दग्धास्तत्रैते राजसूनवः ॥
दैवेन दुर्वितर्क्येण त्रय एवावशेषिताः ॥ २४ ॥

ते सर्वे राजसूनवः राजपुत्राः धुंधोर्मुखाग्निना दग्धा मग्नीभूताः
दुर्वितर्क्येण दैवेन तेषु त्रय एवावशेषिताः ॥ २४ ॥

इस युद्ध में राजा कुवलयारव के सभी पुत्रों को धुंधुदानव ने
अपने मुँह से अग्नि पगट करके जला दिया, भाग्य से तीन लड़के
बच गये ॥ २४ ॥

धुन्धुमार इतिरूपानः कमर्णा तेन स द्विज ।
सोपं शुद्धप्रदेशोस्ति समुद्रो बालुकामयः ॥ २५ ॥

(१) श्री रामचन्द्रजी ने समुद्र के तट पर जाकर सागर से सामुद्रिक पथ मांगने के
लिये पूर्वाभिमुख हो हाथ जोड़ बुराशान लगा प्रार्थना करते तीन दिन उपवास भ्रम
का परन्तु सन्निवृत्ति प्रकट नहीं हुए । तब क्रुद्ध होकर धनुषबाण उठाया और जलज
तटों से समुद्र को सीखा दिया, सामुद्रिक पथ जानु व्याकुल होगये, समुद्र से भयंकर
लहरें उठी लगा और आकाश, पानी, वन, पर्वत सब काँपने लगे । तब समुद्र के

हे द्विज ! तेन कर्मणा स राजा कुबलयाश्वः धुंधुमार इतिख्यातो
नाम संज्ञागतः मघोर्वधेन मधुसूदनवत् । सोमं बालुकामयः समुद्ररशुद्ध
प्रदेशो स्ति ॥ २५ ॥

हे विप्र ! उस कर्म को करने (धुंधु को मारने) से उस
कुबलयाश्व नाम के राजा का नाम धुंधुमार हुआ, और वही यह
बालुकामय शुद्ध प्रदेश है ॥ २५ ॥

के मध्य से निकले तबतक रामचन्द्रजी ने उस महाशय से समुद्र को शोध कर पेंदल
पानी सेना को पार लेजाने की प्रविष्टा की, तब समुद्र की मानहानि देख देवनागोंने
आकाशवाणी द्वारा मना किया और समुद्रदेव सम्मुख आकर प्रार्थना कर बोले कि
हे राजकुमार ! हम काम से, शोभ से, भय से, विस्तीर्णर उस जल को रोक नहीं सकते हैं
आपकी जैसी इच्छा है वही हम भी करने को तैयार हैं और जो आप करेंगे उस को हम
सहन करेंगे । आपकी सेना पार जायगी उस समय कोई जीव उस को नहीं रोक सकता
किन्तु यह जल शशि बीच २ में उत्तम उत्तम स्थल दिलावेगा । ऐसा सुनकर रामचन्द्रजी
ने कहा कि इस अमोघ शस्त्र की किस देश में लोहूँ ? तब समुद्र ने कहा कि उत्तर के देशों
में एक दुमकुसुम नाम का देश पुष्पस्थान है वहाँपर बहुत चौर झाड़ू आभीरादि पानी
का था कर मेरे जल को स्वर्ण करने और पीते हैं । हे राम ! इस उत्तम शर को वहाँही
झाड़िये । क्योंकि उन पानियों के स्वर्ण से जो पाप होता है उस को मैं नहीं सहन
कर सकता । यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने उसी देश में शर छोड़ा । तब से वह देश मरुजान्तार
(मरुजांगल) नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिस स्थान में शर गिरा वहाँ पाताल से पानी
उपर आने लगा, पृथ्वी में विद्रोहगण जिसको प्रसन्न कहते हैं । इसप्रकार अपने अम्यशय
से समुद्र के कुबिलगत जल को शोध लिपा और सर्वत्र विसृष्ट होने लगे । जब से इस देश
का मरुजांगल नाम हीनों लोक में विख्यात हुआ । " विष्णुर्वातं त्रिषु लोकेषु मरु
कान्तार मेघवत् ॥ शोषयित्वा तु तं कुक्षि रामो दशरथात्मजः ॥ परंतुस्मै
वर्द्धा विद्वान्मरुपेऽमरविभ्रमः ॥ " ऐसे रामचन्द्रजी ने उस मरुदेश को बरसान
दिया कि इस देश में पशुपत्तों के बनि बाने दृष्ट बहुत होंगे और लोग भीमारी उस देश
में नहीं होंगी कम दूध और रसार्थ अनेक आभिषो से दुग्ध स्नेहार्थ औरमदिन
हमपिन इत्तों से यह स्थान परिपूर्ण रहेगा । " एषमभिध संयुक्तो यदुभिः
संयुतोमरुः । रामस्य परशुनाथ शिशुः पंथा यभूवह ॥ " श्री रामचन्द्रजी
का बरसान पाकर दह स्थान अनेक इत्तों का आशय हुआ और उनके समस्त पाने
पानियों के एतदावत् हुए ॥ ब्रह्मजीव रामायणे बुद्धवाये २१-२२ सर्गे ॥

अथानिर्मलः संके निजैर्गोतादरीदृष्टः ।

नेर्भयो निर्धनभाति नैर्मर्गिः कृष्णान्धः ॥ २६ ॥

अथ देश संके स्वभावेन स्वगुणा निर्धनः स्वयं निर्धनं
रहित अहमहीदृष्ट अहमहीदृष्ट महीदृष्ट अहमहीदृष्ट
गुणान्धः । निर्धनः निर्धनः अतीव नैर्मर्गिः कृष्णान्धः
ः कृष्णान्धः ॥ २६ ॥

संसार में यह देश अथानिर्मल निर्धन तथा अहम हीदृष्ट
गणः रहित है और निर्धन एवं निर्धन तथा अहम हीदृष्ट
ः है ॥ २६ ॥

अस्था मानवाः सर्वे सरताः शुद्धमानसाः ।

तपव्यक्तीर्ष्यतास्कर्ष्यपरिजिताः माययन्त्रिपताः ॥ २७ ॥

तत्रस्थान्देशतमुत्तमाः सर्वे मानवाः सरताः शुद्धमानसः
मानसाः पवित्रान्तःकरणाः माययन्त्रिपताः
ताः सन्ति ॥ २७ ॥

उस देश के सभी मनुष्य सीधे और शुद्धचित्त तथा कपट,
तप एवं चोरी इत्यादि दुर्गुणों से बहुधा वञ्चित होते हैं ॥ २७ ॥

आचारविनिर्मुक्ता युक्तास्त्रातिथिपूजने ॥

देशीयास्तनथाभूषाः सर्वथा पापभीरवः ॥ २८ ॥

ते मानवा वाद्याचारेण वाद्यशुद्धिरूपस्पर्शस्पर्शवाचारादिना-
निर्मुक्ता रहिता अतिथिपूजने अतिथिसत्कारे युक्ताश्च भवन्तीति ।
तद्देशीया भूषा राजानः सर्वथा पापभीरवो भवन्ति ॥ २८ ॥

वे मनुष्य वाद्यरी आचार-विचार से रहित और अतिथि सेवा में रत
हैं और उस देश के राजा सर्वथा पाप से दूर रहते हैं ॥ २८ ॥

विमाश्च वेदरहिताः प्रतिग्रहविधार्जिताः ।

सुशीलाः साधवः सौम्यास्तथा निर्व्याजजीवनाः ॥ २६ ॥

विमा ब्राह्मणःश्च वेदरहिताः प्रतिग्रहविधार्जिताः सुशीलाः साधवः
सौम्यास्तथा निर्व्याजजीवनाश्च भवन्ति ॥ २६ ॥

उस देश के ब्राह्मण वेद शस्त्र को नहीं जानते और दान नहीं
लेते एवं सुशील साधु और शान्त तथा निष्कपट जीवन व्यतीत करने
वाले होते हैं ॥ २६ ॥

तद्देशीयाः स्त्रियरशुद्धा अतिचांचल्यवर्जिताः ।

अनुस्वभावशालिन्यो देवतातिथिपूजिकाः ॥ ३० ॥

तद्देशीयास्तद्देशप्रसूताः स्त्रियः शुद्धाः शुद्धाचाराः अनिचांचल्य
वर्जिताः अनुस्वभावशालिन्यः कोमलप्रकृतयो देवतातिथिपूजिकाश्च
भवन्तीति ॥ ३० ॥

उस देश की स्त्रियां शुद्धाचरण वाली और अति पंचलता से रहित,
कोमल स्वभाव की एवं देवता तथा अतिथि की सेवा करनेवाली
होती हैं ॥ ३० ॥

तस्मिन्देसे महाभाग ! कश्चित्सिद्धो भविष्यति ॥

सोप्येनां पृथिवीं पूर्णां पावपन् संचरिष्यति ॥ ३१ ॥

हे महाभाग ! तस्मिन्देसे कश्चित्सिद्धो भविष्यति सोप्येनां पूर्णां
पवित्रां पृथिवीं पावयज्ञतिशयेन पवित्रांकुर्वन्संचरिष्यति ॥ ३१ ॥

हे महाभाग ! उस देश में कोई सिद्ध होगा जो इस पवित्र पृथिवी
को अतिशय पवित्र करता हुआ विचरेगा ॥ ३१ ॥

प्रजासंदेशवासिन्यो देशाचारकृतादराः ॥

उपद्रोहोहाश्चर्मवारिपाविन्यः स्पृष्टभोजनाः ॥ ३२ ॥

तद्देशवासिभ्यः प्रजाः देशाचारानुसृतम् । देशस्य वै शासनम्
 कृतं तद्देशवासिभ्यः देशाचारानुसृतम् । उद्देशः । यानि उद्देशान्
 भवद्देशादयो धर्मशास्त्रं निविष्टान् यानि ममानाः चर्मजलजनं प्र
 सोऽशुद्धं तथापि चर्मवासिभ्यः चर्मजनजननम् । सृष्टमेव
 अंगमृतात्पदार्थाणां भेदराश्यामीश्वरविशुद्धिर्भग्नमोजनं संक
 राशुकं धर्मशास्त्रे द्वाते न तथापि पुर्वन्नीति सृष्टमोजनः ॥ ३२ ॥

उस देश के रहनेवाली प्रजा अपने देशाचार का बहुत ध्यान
 करती है उन्हें ही मर्यादा कर्त्ता है चर्मजल पीती है हर किमी के ल
 लगाया शस्त्रादि भोजन कर्त्ता है ॥ ३२ ॥

(ऊँट की मर्यादा चर्मजल पान स्वर्गार्थ के विचार धर्म
 भोजन इत्यादि धर्मग्रन्थों के अनुसार प्रायश्चित्त सूचक होता है इसीलिए
 आचार्यकर्म के संकल्प में इन सबों को शुद्ध पापों में परिगणित
 गया है परन्तु एतद्देश प्रजा को देशाचारवश करना ही पड़ता है ॥

तथापि तद्दोषगणैरसृष्टास्तत्प्रभायनः ॥

तथापि अधोक्तदोषपापाचारादपितस्य सिद्धस्य प्रभायन
 तद्दोषगणैरुक्तदोषसमूहेरसृष्टा निलंघाः प्रजा भवन्त्यादिशेषः ॥

तथापि उस सिद्धके प्रभावेसे वे उपरोक्तदोष प्रजाओंको नहीं ल

ईदृग्गुणविशिष्टेऽस्मिन्विषये द्विपदाम्बर ॥ ३३ ॥

सर्व तीर्थ शिरोरत्नं महातीर्थं विराजते ॥

रूपात् सर्वलोकेषु कपिलायतनन्तिवति ॥ ३४ ॥

हे द्विपदाम्बर ! ईदृग्गुणविशिष्टेऽस्मिन्विषये दे
 सर्वतीर्थलङ्कामभूतं महातीर्थं विराजते यत् सर्वलोकेषु
 स्यात् प्रसिद्धमस्तीति ॥ ३४ ॥

४८ हे मनुष्य श्रेष्ठ ! ऐसे गुणों से युक्त उक्त देश में सब तीर्थों का मुकुट
४९ एक महातीर्थ है । जो सब लोकों में कपिलायतन इस नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३४ ॥

५० समुद्रे बालुकापूर्ण महाद्वीपद्वय स्थितम् ॥

५१ तत्कपिलायतनम् बालुकापूर्णं समुद्रे महाद्वीपद्वय स्थितमस्ति ॥

५२ यह कपिलायतन बालुकामय समुद्र में एक महाद्वीप के सदृश
५३ वर्तमान है ॥

५४ निर्जलेषु जलप्रायद्वीपोपं शर्करामयः ॥ ३५ ॥

५५ नाना मृगगणाकीर्णः सर्वकालनिरामयः ॥

५६ निर्जलेषु निर्जलदेशेषु शर्करामयः सिक्तामयः नानामृगगणाकीर्णः

५७ विविगमजातिव्याप्तः सर्वकालनिरामयोऽयं जलप्रायद्वीपः अर्थादस्मिन्म-

५८ हापदेशे जलमपि भवत्येव ॥

इन निर्जल प्रदेशों में भी यह बालुकामय द्वीप अनेक मृगगणों
से युक्त सर्वदा निरामय और जलयुक्त है, अर्थात् निर्जलदेश
होने पर भी यहां जल हो ही जाता है ।

५९ प्रसिद्धात्पुष्करार्त्तीर्यात्प्रत्यग्दिशि तपोधन ॥ ३६ ॥

६० धर्मते कापिलं तीर्थमेव विंशति योजने ॥

६१ कृष्णसारमयी भूमिर्वर्तते यत्र पावनी ॥ ३७ ॥

६२ हे तपोधन ! प्रसिद्धात्पुष्करार्त्तीर्यात् पुष्करक्षेत्रात्प्रत्यग्दिशि पश्चिमा-
६३ र्यायां एक विंशति योजने कापिलं तीर्थमेव वर्तते यत्र कृष्णसारमयी पावनी
६४ पवित्रा भूमिर्वर्तते ॥ ३६, ३७ ॥

६५ हे तपोधन ! इस मण्डित पुष्करतीर्थ से पश्चिम दिशामें इकोन योजन पर
६६ एक कपिलतीर्थ है जहां की पवित्रभूमि कृष्ण-सार मृगोंसे युक्त है ॥ ३६, ३७ ॥

६७ पद्मनां पात्र विप्रेन्द्र ! सदा स्वर्गप्रदायिका ॥

६८ हे विप्रेन्द्र ! यत्र कपिल तीर्थं या पूर्वभोक्तृणां कृष्ण-सारमयी
६९ भूमिः सा यज्वनां यजर्कृत्वा सदा स्वर्गदायिका भवतीति ॥

हे विप्रवर ! वह कृष्ण-सारमयी पवित्र भूमि यज्ञ करनेवालों को
सदा स्वर्ग देती है ॥

सर्वतीर्थवरं ह्येतत्सर्वक्षेत्रवरं तथा ॥ ३८ ॥

सारात्सारतरं स्थानं पुण्यात्पुण्यतरं पुनः ॥

(स्पष्टार्थः)—

यह स्थान सब तीर्थों से तथा सब क्षेत्रों से श्रेष्ठ है और इस
से उत्तम तथा पवित्र से भी पवित्र है ॥

त्रिषु लोकेषु भूलोको भूलोके लोक एव हि ॥ ३९ ॥

लोके द्वीपवती पृथ्वी जम्बूद्वीपस्ततोऽधिकः ॥

तद्वर्षनवके विप्र श्रेष्ठं भारतमुच्यते ॥ ४० ॥

(१) इस भूलोक में संक्षेप से जम्बूद्वीपादि सातों द्वीपों तथा उनमें से केवल जम्बू
के ही अन्तर्गत नवों खण्डों को दिखाते हैं । भूगोल के आधा उत्तर का भाग जम्बू
है, और जम्बूद्वीप भी दक्षिणी सीमा पर चारममुद्र है, और इसके उत्तर तीर के देश
को निरवदेश कहते हैं, १८ निरवदेश में लंका (सिलोन), इससे पश्चिम रोमक (स्पेन)
इसमें पश्चिम सिद्धपुर (अमेरिका), उससे आगे यमकोटि ये चार स्थान हैं, अर्थात्
ये पूर्ण यमकोटि, पश्चिम रोमक और ठीक नीचे सिद्धपुर हैं । ये चारों स्थान भूगोल
अनुसार पर हैं । और इन चारों स्थानों से मेरुपर्यन्त निम्न दीप्त पर्वत की उतार है
इसलिये संछा से उत्तर दिग्गिरि है जो पूर्व-पश्चिम समुद्र तक गया है । और दिग्गिरि
से उत्तर मेरुपर्यन्त है, वह भी पूर्व-पश्चिम समुद्र तक गया है, एवं इससे ऊपर
निम्नपर्यन्त समुद्र पर्यन्त गया है । इन सबों के बीच २ में नीलाकार के देश को
मिनाक्षी द्वीपदेश कहते हैं । उनमें पड़ता भारतवर्ष है, इसके उत्तर का हि
देश है, उससे उत्तर इरिष्य है एवं नीचे जो सिद्धपुर आजकल के अमेरिका है
उससे उत्तर शृंगगान्धर्वन पूर्व-पश्चिम समुद्र पर्यन्त है, उसके उत्तर वीरगिरी
और उसके उत्तर नीलगिरि है । इनके बीच २ में भी देश है । सिद्धपुर और शृंगगान
के बीच देश को कुवर्ष कहते हैं, शृंगगान और वीरगिरी के बीच में हिरण्यवर्ष है
तथा वीरगिरी और नीलगिरि के बीच में रण्यवर्ष है । इन सब में ४ देशों
का विरोध हुआ । फिर यमकोटि जो पूर्ण में कहा गया है वहां से एक मालवप्रान्त
निम्नपर्यन्त निम्नपर्यन्त में निम्नता हुआ नीलगिरि तक पहुंचा है, उसके और समुद्र के

त्रिषु भूर्भुवस्स्वलोके प्ययंभूनोंकः अस्मिन् भूलोके हि यतः लोको
एव अत्र लोक उच्यो भुवन जन वाचकः लोकस्तु भुवनेजने
लोकेत्या अतोऽस्मिन्नोके भुवने पृथ्वी द्वीपवती द्वीपा विद्यमानाः
स्या अस्याप्वेति द्वीपवती ततम्नेषु द्वीपेषु जम्बूद्वीपोऽधिको
नेति । वर्षाणां नवकानां समहारो वर्षं नवकम् तस्य जम्बूद्वीपस्य
वर्षं तद्वर्षं नवकं तस्मिन् हे विप्र ! अष्टं भारतं उच्यते ॥ ३६, ४० ॥

भूनोंक, भुवलोक, स्वलोक ये तीन लोक हैं इन तीनों लोकों में
भूलोक है इस भूलोक में ही मनुष्य रहते हैं इसलिये इस लोक
सातद्वी (वाती) पृथ्वी नव देशों में बंटी हुई है उन सात द्वीपों में
जम्बूद्वीप सब से बड़ा द्वीप है इस जम्बूद्वीप के नव खण्ड हैं उन में
१ से अष्ट भारतवर्ष है ॥ ३६, ४० ॥

च ये महास्व सागरा देश हे, और पश्चिम में रोमेरा से मध्यमादन नाम का एक
पद निकलकर बंटे हैं। निगर से मिलता हुआ नील तट गया है। उसके और समुद्र
बीच में केतुमातृ आठवां देश है एवं निगर, नील, माल्यवान और मध्यमादन इन
(महापर्वतों से घिरा हुआ रसातल नाम का पृथ्वी का नगराखण्ड है। इसकी
पश्चिमोत्तर दिशाओं का श्रीराम-भवन अर्थात् स्वर्गभूमि कहते हैं। इसतरह पृथ्वी के
सातों रूप जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष, हिमालय, इरिवा, रम्पकवर्ष, हिमालयवर्ष
र कुवर्ष संज्ञित से अंगरेज तट है और पूर्वोत्तर के अंगरेज महाभारत,
हिमालय के तीर पर केतुमातृवर्ष एवं बीच में मेहरावत है, जिसके चारों
पक्षों दक्षिण निगर, पूर्व माल्यवान, उत्तर नीलोगीर, पश्चिम मध्यमादन से घिरा हुआ
सात नगरवर्ष स्वर्गभूमि है ये नव खण्ड हैं।

अब इस भारतवर्ष में भी नव खण्ड और सात कुशाखण्ड हैं, जिनकी भी विजति
होसता है। भारतवर्ष भरतनी के नाम से है यह कथापुराणों में प्रसिद्ध है इसके बीच
में पड़ता ऐन्द्राखण्ड, दूसरा अस्तोक, तीसरा नागवर्ष, चौथा गमस्ति, पांचवां कुमारिकाखण्ड,
छठा नागराखण्ड, सातवां सोम्य, आठवां वारुण और नवां मध्यतंतुक-खण्ड है।
वर्षान्वयस्था और आश्विन-वर्ष, केवल इस कुमारिका के निवासियों में ही है। देश देशों में
वर्षावाराधमादि का विचार नहीं है। इस (भारतवर्ष) में माहेन्द्र, शुक्ति, मलय, अरुण,
पारिपत्र, रुद्र और विष्णु ये सात कुलवर्षत हैं। इन पर्वतों के देश २ में निव २ नाम है।

विकलः स्त्री पुत्रादि परिवारेभ्य उद्धिमचिणोजनः महत्त्वंचानहत्त्वं
च न वेत्ति न जानाति लोकोजनः गतानुगतिकः येनास्मद्विजितरोयाना
येन याताः पितामहास्तेनमार्गेण गन्तव्यमिति मार्गद्वितम्बीति पारनार्थिकः
ईश्वर प्राणिभान रूप परमार्थसाधको लोकोजनोनेति ॥ ४४ ॥

स्त्री, पुरुष, धन परिवारादि की अभिलाषाओं में विह्वल चित्त
मनुष्य गतानुगतिक होते हैं अर्थात् एक दूसरे के पीछे चलनेवाले होते हैं
वे ईश्वर सम्बन्धी परमार्थी ज्ञान के साधक नहीं होते, इसलिये वे
इसके महत्व व अमदत्व को नहीं जान सकते क्योंकि उन्हें अन्य विषय
के मनन करने का अवकाश ही नहीं मिलता ॥ ४४ ॥

सारं च यदसारं च शास्त्रादेव हि मन्यते ॥

यस्य शास्त्रमयं चक्षुः सचक्षुष्मान्नचेतरः ॥ ४५ ॥

यत्सारं यदसारं च वास्तु तच्छास्त्रादेव हि यतो मन्यते ॥ यतः
यस्य चक्षुः शास्त्रमयं भवति स चक्षुष्मान् नचेतरः ॥ ४५ ॥

जो सार वास्तु है और जो असार वस्तु है वह शास्त्र से ही
जाना जाता है जिसका शास्त्रमय नेत्र है वही नेत्रवान् है
दूसरा नहीं ॥ ४५ ॥

सारा त्सारतरं विद्धि तीर्थ कापिल वैविकम् ॥

मा संशय महाभाग ! मधुक्ते त्वं कदाचन ॥ ४६ ॥

हे महाभाग ! कपिलोदेवोपरय तत्कापिलवैविकम् तीर्थ सारा-
त्सारतरं विद्धि जानीहि मधुक्ते मदीय कथने कदाचन मा संशय संदेह
मा नुरु ॥ ४६ ॥

हे महाभाग ! इस कपिल तीर्थ को उत्तम से उत्तम जानो, मेरे
इस कथन में कभी शन्देह मत करो ॥ ४६ ॥

ममार्जुन जीर्णो विपुलः सागराणि प्रचक्षते ॥

तेषु महतीर्गह्वराणि प्रमाणादीनि मत्सरा ॥ ४१ ॥

हे ममार्जुन ! यह सागर ! मम जीर्णो विपुल सागरों में समस्त मत्सरा हैं ।
जिनमें बड़ी बड़ी गहवाइयाँ प्रमाणादी हैं मत्सरा ॥ ४१ ॥

हे कृष्ण ममार्जुन ! तुम मत्सराओं में जीर्ण भी उपमोक्ष नीये हैं उन
उपमोक्ष मत्सराओं में भी ममार्जुन यदि मत्सरा हैं ॥ ४१ ॥

तेष्वपि प्रथमं कैवल्यमस्मिन्नज्ञानचक्षुषः ॥

साक्षात्साक्षात्तं माहः कविनाममुत्तमम् ॥ ४२ ॥

कैवल्यज्ञानचक्षुषः विज्ञानमेव चक्षुर्वेदान्ते तेष्वपि सर्वार्थज्ञेय
प्रथमं साक्षात्साक्षात्तं माहः कविनाममुत्तमम् ॥ ४२ ॥

विज्ञान दृष्टि में देवान् वेदान्ते मत्सरा ज्ञेय उन सर्वार्थ
ज्ञेयों में साक्षात्साक्षात्तं माहः कविनाममुत्तमम् ॥ ४२ ॥

एतत्तीर्थस्य साहात्म्यं कलौ जानन्ति केचन ॥

जनाः सर्वे न जानन्ति महामोहान्धचक्षुषः ॥ ४३ ॥

कलौ कलियुगे एतत्तीर्थस्य साहात्म्यं केचन जना जानन्ति महा-
मोहान्धचक्षुषः दारा पुत्र मित्र धन कुटुम्ब परिवारादिरूपोऽयं संसार
एवमहामोहः अस्मिन्निमगे चक्षुर्वेदान्ते महा मोहान्धचक्षुषोभवन्ति ते
सर्वे न जानन्तीति ॥ ४३ ॥

कलियुग में इस तीर्थ के साहात्म्य को कोई कोई मनुष्य जानते
हैं स्त्री पुत्र मित्र धन कुटुम्ब परिवारादि रूप संसार के महामोह से
अन्धचक्षु हैं जिनको वे नहीं जानते ॥ ४३ ॥

महत्त्वं चामहत्त्वं च न बोधति विकलोजनः ॥

गतालुगनिकोलोकोनलोकः पारमार्थिकः ॥ ४४ ॥

विकलः स्त्री पुत्रादि परिवारेभ्य उद्विग्नचिरोजनः महत्त्वं चामहत्त्वं
च न वेत्ति न जानाति लोकोजनः गतानुगतिकः येनास्मदितरोयाना
येन याताः पितामहास्तेनमार्गेण गन्तव्यमिति मार्गादलम्बीति पारनाथिकः
ईश्वर प्राणिधान रूप परमार्थसाधको लोकोजनेनेति ॥ ४४ ॥

सौ, पुरुष, धन परिवारादि की अभिलाषाओं में विह्वल निवृ
मनुष्य गतानुगतिक होते हैं अर्थात् एक दूसरे के पीछे चलनेवाले होते हैं
ये ईश्वर सम्बन्धी परमार्थी ज्ञान के साधक नहीं होते, इसलिये वे
इसके महत्त्व व अमहत्त्व को नहीं जान सकते क्योंकि उन्हें अन्य विषय
के मनन करने का अवकाश ही नहीं मिलता ॥ ४४ ॥

सारं च यदसारं च शास्त्रादिष हि मन्यते ॥

यस्य शास्त्रमयं वस्तुः सचक्षुष्मान्नचेतरः ॥ ४५ ॥

यत्सारं यदसारं च वस्तु तच्छास्त्रादेव हि यतो मन्यते ॥ अतः
यस्य वस्तुः शास्त्रमयं भवति स चक्षुष्मान् नचेतरः ॥ ४५ ॥

जो सार वस्तु है और जो असार वस्तु है वह शास्त्र से ही
जाना जाता है जिसका शास्त्रमय नेत्र है वही नेत्रवान् है
दूसरा नहीं ॥ ४५ ॥

सारा त्सारतरं विद्धि तीर्थं कापिल दैविकम् ॥

मा संशय महाभाग ! मदुक्ते त्वं कदाचन ॥ ४६ ॥

हे महाभाग ! कपिलोदेवोपस्य तत्कापिलदैविकम् तीर्थं सारा-
त्सारतरं विद्धि जानीहि मदुक्ते मदीय कथने कदाचन मा संशय सेदेहं
मा गुरु ॥ ४६ ॥

हे महाभाग ! इस कपिल तीर्थ को उत्तम से उत्तम जानो, मेरे
इस कथन में कभी सन्देह मन न करो ॥ ४६ ॥

मार्गं माह्व मामेवु मर्दनार्थेणु तीर्थं राद ॥

मोक्षार्थं हेतुं विज्ञाय गोपिनेपं सुरैः कृत ॥ ४७ ॥

मार्गेण द्वादशगु भैरवादिषु मागानामार्गशीर्षं हामिनि भगवदुक्त-
मार्गशीर्षं इव सर्वनाम्बु प्रयागादिषु अयं कपिलाधमर्त्तीर्षगद् मार्गगजः
इमं मोक्षार्थं हेतुं विज्ञाय कृत सुरैरगोपिनः ॥ ४७ ॥

भैरवादि बारहों मार्गों में सब से अच्छे जैसे मार्गशीर्ष मास है वैसे
ही प्रयागादि सब तीर्थों में अच्छे यह तीर्थराज कपिलाधम है, देवताओं
ने मोक्ष प्राप्ति का निशान इसी को समझा, इसलिये गुप्त करदिया ॥ ४७ ॥

नास्य तीर्थस्य माहात्म्यं यक्तुं शक्योस्मि पद्मुखैः ॥

शेषोऽप्यशेषं स्वमुखैर्निरशेषं यक्तुमक्षमः ॥ ४८ ॥

अस्मिन्पक्षे अशेषमेकत्र पुनरुद्धान्तरे निरशेषं पदार्थं वाचिषद्वयं
युक्तं न भाति मन्मते तु यथा पद्मुखैः कार्तिकेयो वक्तुमशक्यस्तथैव शेषोऽपि
स्वर्कायै स्तद्वत् मुखैर्वक्तुमशक्य इति भावद्योतनार्थं निरशेषमिति स्थले सहासै-
रिति पाठो भवेच्छ्रुत्वा साधु पाठ इति तेन ॥

अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं महं पद्मुखैर्वक्तुं न शक्योऽस्मि मम का कथा
शेषोऽपि सहस्रैस्त्व मुखैरशेषं वक्तुमक्षम इति स्कन्दोक्ति स्तर्माचीना ॥ ४८ ॥

स्कन्दजी कहते हैं कि मैं अपने ६ मुखों से इस तीर्थ के माहात्म्य
को नहीं कह सकता, तो मेरी क्या गिन्ती है जबकि साक्षात् शेष भी अपने
हजार मुखों से इस के पूर्ण माहात्म्य को कहने में असमर्थ है ॥ ४८ ॥

तथापि शंसती कर्तुं जिह्वा मामभिधासति ॥

तीर्थरत्नस्य माहात्म्यं प्रवक्ष्यामि यथामति ॥ ४९ ॥

तथापि शंसती कर्तुं शंसितुं जिह्वा मां अभिधासति प्रेरयति अतः
ति तीर्थरत्नस्य माहात्म्यं प्रवक्ष्यामि कथयिष्यामि ॥ ४९ ॥

तथापि कथन करने के लिए मेरी जिह्वा मुझे प्रेरणा करती है इसलिए जैसी मेरी बुद्धि है तदनुकूल इस तीर्थ के माहात्म्य को मैं कहूँगा ॥ ४६ ॥

एवं महाभाग ! महीतले मलं विनाशयत्तीर्थवरं महो-
ज्ज्वलम् ॥ विभाति यद्दर्शनतोऽपिमानवाः परम्पदं
यान्ति विमान मानवाः ॥५०॥

हे महाभाग ! महीतले एवं एतादृशं महोज्ज्वलं महादीप्तं तीर्थ-
वरं मलं पापं विनाशयन् विभाति सज्जते यद्दर्शनतो मस्यदर्शनमात्रेण
मानवाः साधारण मनुष्या अपि विमानमानवास्सन्तः अर्थाद्विमानमा
रुद्ध परम्पदं स्वर्गंति यान्ति ॥ ५० ॥

हे महाभाग ! इस पृथ्वीतल में इस प्रकार पाप को विनाश करता
हुआ महोज्ज्वल यह तीर्थराज विराजमान है जिसके दर्शन मात्र से
साधारण मनुष्य भी विमान पर आरोढ़ होकर परमधाम को चले
जाते हैं ॥ ५० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्वादे कपिलायतनमाहात्म्ये
तीर्थवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।



तृतीयाध्यायकथारंभः ।



(मृत उवाच)

इत्युक्त्वा पुनरेवाह महिमानमथाद्रितः ॥

कपिलायततीर्थस्य पार्वतीनन्दनोऽमुनिः ॥ १ ॥

अथ पार्वतीनन्दनो मुनिः स्कन्द इत्येवमुक्त्वा कपिलायत
तीर्थस्य महिमानमादितः पुनरेवाह कथयामास ॥ १ ॥

इस प्रकार पार्वतीनन्दन स्कन्दजी ने पूर्वाध्याय की कथा कहकर
पुनः कपिलायत (कोलायत) तीर्थ की महिमा को आदि से कहना
आरंभ किया ॥ १ ॥

शृणु द्विज ! यथैवेदं तीर्थं कापिलसंज्ञकम् ॥

उद्धारं पातकारण्यदावानलसमप्रभम् ॥ २ ॥

हे द्विज ! पातकारण्यदावानलसमप्रभम् यथैवेदं कापिलसंज्ञ
कम् तीर्थमस्ति तथैवास्पोद्धारमपित्वं शृणु ॥ २ ॥

हे द्विज ! पापरूपी वन को मरुत करनेवाले दावानल (वनाग्नि)
के समान जैसा यह कपिलतीर्थ है उसी प्रकार इसका उद्धार भी मैं
कहता हूँ, सुनो ! ॥ २ ॥

मृष्ट्यादौ ब्रह्मणः पुत्रः कर्दमोऽभूत्प्रजापतिः ॥

तस्य स्वायंभुवमुना पत्न्यासीक्षिपतग्रता ॥ ३ ॥

(मृष्ट्यादाविति स्पष्टार्थं पद्यम्)

मृष्टि के आदि में ब्रह्मा के पुत्र कर्दमअपि प्रजापति हुए उनकी
की स्वयंभू मनु की पुत्री हुई जो निवृतप्रजा अर्थात् मियों के जो
पनिवृत्तादि धर्म हैं उनके कारण करीबनी थी ॥ ३ ॥

तस्यां पुत्रः सम्भवत् कर्दमस्य प्रजापतेः ॥

श्रीविष्णोरंशसम्भूतः कपिलाख्यः परः पुमान् ॥ ४ ॥

तस्यां स्वायंभुवसुतायां श्रीविष्णोरंशसम्भूतः परः पुमान्
परमपुरुषः कपिलाख्यः भगवान्कपिलः प्रजापतेः कर्दमस्य पुत्रः
सम्भवत् ॥ ४ ॥

उस स्वायंभुव मनु की पुत्री से प्रजापति कर्दमश्रुपी के पुत्र
श्रीविष्णुभगवान् का अंश परमपुरुष भगवान् कपिल उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥

स्वमात्रे देवहृत्येषः सांख्यं योगं सविस्तरम् ॥

प्रोवाच जगद्बुद्धारकारकं कुरुणाकरः ॥ ५ ॥

यः कुरुणाकरः कृपालुः भगवान्कपिलः स्वकीये अत्यल्पे-
वयसि स्वमात्रे देवहृत्ये जगद्बुद्धारकारकं सांख्ययोगं च सविस्त-
रं प्रोवाच उपदिष्टवान् ॥ ५ ॥

जो कुरुणाकर भगवान् कपिलजी ने अपनी थोड़ी अवस्था में
ही अपनी माता देवहूती को संसारोद्धारकारक सांख्य और योग
का उपदेश दिया ॥ ५ ॥

गुणैस्तस्य ह्यसंख्येयान्नवाङ्मनसगोचरान् ॥

वेदो न वक्तुं शक्तः स्यात्किमुत्तान्येविपश्चितः ॥ ६ ॥

हि यतस्तस्य कपिलस्य अवाङ्मनसगोचरानसंख्येयान्
गुणान् वेदो वक्तुं न शक्तः स्यात् अतो न्ये विपश्चितो विद्वान्सः
किमुत कथं वक्तुं समर्था भविष्यन्ति “यत्रवाचां गतिर्नास्ति
मनसरवापि तादृशी । एवं भूतान् गुणान्वक्तुं वेदोपि न भवेदक्षम्”
इति ॥ ६ ॥

उस महात्मा कपिल ने मनवचनतीर्त असंख्य गुणों को वेद
भी नहीं कह सकता तो और विद्वानों की क्या कथा है अर्थात् वे
कैसे वर्णन कर सकेंगे ॥ ६ ॥

मात्रे चाप्यात्मिकीविद्यां दद्यान्नुज्ञाप्य मातरं ॥
स्वच्छन्दं तदनुज्ञातः प्रागुदीचीं दिशं ययी ॥ ७ ॥

मगवान् कपिलः मात्रे देवहृत्य आप्यात्मिकीं सांख्ययोग-
मपिनीं विद्यां दत्त्वा चकारान् पुनर्मानरं अनुज्ञाप्य दृढपा-
तस्यां विद्यायां निपुण्य तदनुज्ञातः मातुराज्ञया स्वच्छन्दं प्रागु-
दीचीं दिशं ययी मगवान् ॥ ७ ॥

मगवान् कपिल माता देवहृती को अत्यात्म-विद्या का हृद-
उद्देश देकर उनकी आज्ञा लेकर स्वच्छन्दता से अर्थात् काम, क्रोध,
लोभ, मोह, मद, मात्सर्यादि से निवृत्त हो माया मोक्षदि सब सांसारिक
बन्धनों को तोड़कर पूर्व उत्तर की दिशा में चले गये ॥ ७ ॥

गच्छन्पथिददर्शान्ने समुद्रं बालुकामयम् ॥
तीर्थभूतं परंधाम धरिष्याननसन्निभम् ॥ ८ ॥

पथि मार्गे गच्छन् अग्रे तीर्थभूतं परंधाम उत्कृष्टं स्थानं
धरिष्याः आनन सन्निभम् सदृशम् बालुकामयं समुद्रं ददर्श ॥ ८ ॥

मार्ग में जाते हुए कपिलजी ने आगे परमोत्तम स्थान, पृथ्वी
के मुख के सदृश बालुकामय समुद्र को देखा ॥ ८ ॥

नाना मृगगणाक्षीर्णं नाना पृच्छलतायुतम् ॥
नाना बिहगसंघुष्टं नाना मुनि निपेक्षितम् ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा विचारयामास कपिलः श्रीनिकेतनः ॥
इदं स्थानं परं दिव्यं तपसः सिद्धिदायकम् ॥ १० ॥

इत्युक्त्या संचकारेह तन्मनोहरतागुणात् ॥
लोकानुग्रहकाम्यार्थं कल्पान्तं तप आस्थितः ॥ ११ ॥

(सरलार्थानीमानि पद्यानि)

श्रीनिकेतन भगवान् कपिलजी अनेक प्रकार के मृगों से व्याप्त, अनेक प्रकार के वृक्ष लताओं से युक्त, विविध पक्षियों से कृत्रित और मुनिगणों से सेवित उस बालुकामय सामुद्रिक प्रदेश को देख कर विचारने लगे और तपस्या की सिद्धि देनेवाला परमरम्य यह स्थान है ऐसा कह कर उसकी मनोहरताई से आकर्षित होकर संसार के अनुग्रह की कामना से कलान्त तपस्या करने के लिए बैठ गये ॥ ९, १०, ११ ॥

एकया चाथमूर्त्याय प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥

अतस्तद्भुवनेरुपातं कपिलालयनामकम् ॥ १२ ॥

महात्मा कपिलो नदि पूर्णेशेन तत्रावलिष्टत् अंशेन तत्र कल्पान्तं तपसिस्थितः अंशेनकामन्धामूर्तिभिवधाय तपकषामूर्त्या पूर्वसंकल्पितां प्रागुदीचीं दिशं ययौ अतो भुवने लोके तत् स्थानं कपिलालयनामकं गृहानं प्रविद्धम् ॥ १२ ॥

भगवान् कपिलजी अपनी पूर्ण कला से उस बालुकामय प्रदेश में आकलान्त तपस्या करने नदी बंटे किन्तु एक मूर्ति से वहाँ कलान्त तप करने के लिये बंटे और दूसरी मूर्ति अंगालिका भारण कर अपने पूर्व संकल्पित पूर्वोत्तर दिशा को गये इसलिये तबसे यह स्थान कपिलालय नाम से संसार में विख्यात हुआ ॥ १२ ॥

तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं कथं वक्तुमहंक्षमः ॥

सिद्देशाधिष्ठितं यस्मात्कलिकालमहापदम् ॥ १३ ॥

यस्मात्कारणात्सिद्देशेन भगवता कपिलेनाधिष्ठितं तीर्थं कलिकालमहापदमस्ति अतस्तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं वर्णयितुमहं कथं क्षमः ममर्भ इति ॥ १३ ॥

मिदं (मदभक्त कवि मुनि) का निमग्नस्थान त्रिग विंगतग
से कलिकाल के पापों का नाश करनेवाला है उम नीचे के मदान की
गथावत् वर्णन करने में मैं शगुन्य हूँ ॥ १३ ॥

नारायणाश्रमं पुण्यं यथा यद्विज्ञाश्रमम् ॥

आरण्येस्मिन्माहापुण्यं गयेष्टं कपिलाश्रमम् ॥ १४ ॥

(स्पष्टार्थः)

जैसे नारायणाश्रम चरित्राश्रम पवित्राश्रम है तैसे इस जंगलि
मेरे में यह कपिलाश्रम माहापवित्र स्थान है ॥ १४ ॥

अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं नालं पितामहम् ॥

तथापि वर्णयेहं ते किञ्चित्किञ्चित्समासतः ॥ १५ ॥

अस्मिन्यद्ये कपिलाश्रमस्य वर्णनानीतं महत्त्वं सूचयति यथा-
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं ममपिना शंकरोपि वक्तुं नालं नहि ममर्थः
तथाप्यहं ते तुभ्यं समासतः संक्षेपतः किञ्चित्किञ्चित्प्रवक्ष्यामि ॥ १५ ॥

इस तीर्थ के माहात्म्य को मेरे पिता भी वर्णन करने में समर्थ
नहीं हैं तथापि मैं तुम्हारे लिये संक्षेप से कुछ २ वर्णन करता हूँ ॥ १५ ॥

अथ तीर्थं गन्तुमना यदाभवति मानवः ॥

तदैव तस्य पापानि मूर्छितानि भवन्ति हि ॥ १६ ॥

मानवः अस्मिन्तीर्थे यदा गन्तुमना भवति तदैव तस्य पापानि
मूर्छितानि भवन्ति हि निश्चयार्थकोऽव्ययः ॥ १६ ॥

मनुष्य जब इस पवित्र तीर्थ में जाने की इच्छा करता है उसी
समय उस की इच्छामात्र ही से उसके सफल संचित पाप मूर्छित हो
जाते हैं ॥ १६ ॥

विनिर्गतिं यद्वापेतात्स्नेहः सन्निवृत्तिः ॥ १५ ॥

मृतानि पापजातानि सद्यः एवेव न संशयः ॥ १७ ॥

(स्पष्टार्थः)

हे तपोधन ! जब प्रेमपूर्वक तीर्थ स्नान करने जाने के लिये मनुष्य अपने गृह से बाहर होता है तब उसके सब पाप-समूह मृत (नष्ट) हो जाते हैं इस में संशय नहीं ॥ १७ ॥

एतत्तीर्थस्य सीमायां नविशेत्पापपूरुषः ॥

ततोऽयं निर्मलो भूत्वा तीर्थं सीमां प्रपश्यति ॥ १८ ॥

(स्पष्टम्)

पापी पुरुष इस तीर्थ की सीमा में न प्रवेश करे इसलिये सीमा से पहले ही उस के पाप नष्ट हो जाते हैं और वह निर्पाप होकर तीर्थ सीमा को देखता है ॥ १८ ॥

मासंशयिष्ठां मनसि सिद्धेशाधिष्ठितां भुवम् ।

सिद्धेशाधिष्ठितां भुवम् मनसि मा संशयिष्ठाः ।

सिद्धेश भगवान् कपिल मुनि की यह तपोभूमि है इस में किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना ।

योऽयं कर्तुमकर्तुम्या हान्यथा कर्तुमीश्वरः ॥ १९ ॥

तस्येयं तपसोभूमिः सर्वदेवैरधिष्ठिता ॥

माहात्म्यं श्रवणे चास्या नैव कार्या विचारणा ॥ २० ॥

योऽयं भगवान्कपिलः हाति निधयेन कर्तुमकर्तुम्यान्यथा कर्तुमीश्वरः समर्थः तस्येयं सर्वदेवैरधिष्ठिता तपसोभूमिः अस्या माहात्म्यश्रवणे च विचारणा नैव कार्या यतः श्रवणेऽपि पुण्या विशय्यमिति भावः ॥ २० ॥

इस तीर्थ के महात्म्य को श्रवण करने में भी आलस्य नहीं करना चाहिये इसका हेतु कहते हैं कि श्रीविष्णुमगवान् की माया से मोहित मूढ़नर इस कलिकाल में सब तीर्थों के शिरोरत्न कपिलाश्रम को नहीं जा सकते हैं । इसलिये उनको इसका माहात्म्य श्रवण ही लाभकारी होगा ॥ २१ ॥

तीर्थस्य नामश्रवणादुच्चारणादपि ॥

विलयं यान्ति पापानि हिमानीष तपोन्तिके ॥ २२ ॥

अस्मिन्पद्ये महात्म्यश्रवणफलं दर्शयति यथा तीर्थस्य कपिलायतनस्य नामश्रवणात् वचनेन तन्नामोच्चारणादपि तपोन्तिके हिमानीः हिमसंहतिरिव पापानि विलयं नाशं यान्ति अर्थात् केवल नामश्रवणादुच्चारणाद्वा पापानां नाशस्तदा समग्र महात्म्यश्रवणस्य का कथेति तात्पर्यम् ॥ २२ ॥

इस श्लोक में मगवान् स्कन्ददेव माहात्म्यश्रवण का फल बताते हैं कि जिस तीर्थ के नाम श्रवण से या नामोच्चारण से ही शीघ्र आत्मा में हिमसंघति के समान पापराशि विलय को प्राप्त होती है । जब नाम श्रवण और नामोच्चारण में यह फल होता है तो समग्र माहात्म्य श्रवण करने की क्या बात है ॥ २२ ॥

• से उक्त पुण्यस्थान का मग्न्य पूर्णरूप में प्रकट होगया है । जहां पर यात्रियों के लिये अनेक प्रकार के मन्दिर कई राज की ओर से और कई एक देशवासी बनाये स्थितियों की ओर से स्थापित किये गये हैं और यात्रियों के सुभीने के लिये धर्मशास्त्र निर्माण होनी प्रारंभ होगई हैं । और साथ में यह एक बड़ा ही परोपकार का विषय है कि श्री भूतदानामी ने यात्रियों के सुभीने के लिये अमोघ परिभ्रम व अधिन्तर धनव्यय करके बीकानेर से कपिलायतन तीर्थस्थान तक एक रेलवे-लाइन भी खोलदी है कि जिससे सांघविद्याल में देश देशांतरों के सभी यात्रियों की तीर्थ स्नानादि पुण्य प्राप्ति की बड़ी सुगमता हो गयी है ।

सर्वपापैश्चहरणं सर्वनीतिक्रममश्नु ॥

पुण्यवत् सर्वगजानां महाज्ञानतत्त्वमश्नु ॥ २३ ॥

(महायोगम्)

यह भीषं सब पापपुण्यों को हरण करता है, सब नीतियों का फल देता है, सब यज्ञों का पुण्य देनेवाला है, और सब महाज्ञानों का फल देनेवाला है ॥ २३ ॥

इदं सत्ययुगे ख्यातं कर्त्तादेवैः सुगोपितम् ॥

श्रेतागान्तु प्रयागाख्यं तीर्थं ख्यातं धरातले ॥ २४ ॥

द्वापरे पुष्करं नाम कलौ गङ्गैवकेवलम् ॥

इत्थं युगानुरोधेन सन्ति तीर्थानि भूतले ॥ २५ ॥

इदं कपिलाश्रमं सत्ययुगे ख्यातं प्रसिद्धमस्मिन् कलौ देवैः सुगोपितम् सुगोप्परपितम् ॥ कलौ कायकेशादिकठिनतपसाना-
घरखेऽश्रमर्थाजनाः स्वस्वापासेन बहुपृथग्यत्नामादयैव गत्वास्नान्वा-
देवं ध्यात्वा स्वांस्वामभीप्सितां गतिं यास्यन्त्यतोऽन्येषां तीर्थानां
देवानां च प्रभावोन्पतमोभविष्यतीतिबुद्धयैवदेवैः सुगोपितमिति-
भावः ॥ पुनः कलियुगे गुप्तमपितर्त्तीर्थं परमकारुणिकेन
लोकानुग्रहकारिणा भगवता स्कन्देन प्रकटीकृतमिति ॥ एवं
सत्ययुगे कपिलतीर्थस्य प्रसिद्धयनन्तरं श्रेतागान्तु प्रयागाख्यं
तीर्थं ख्यातं स्वांप्रसिद्धिमगात्ततो द्वापरे पुष्कराश्रमं तीर्थं प्रसिद्धम् ॥
कलौ तु कपिलतीर्थस्य गुप्तत्वात्केवलं गङ्गैव स्वांप्रख्यातिगता ।
इत्थं युगानुरोधेन भूतले तीर्थानि सन्ति ॥ २४, २५ ॥

यह कपिलाश्रम सत्ययुग में प्रसिद्ध हुआ था परन्तु कलियुग में
देवताओं ने गुप्त कर दिया इनका आराध्य यही हो सकता है कि कलियुग
में मनुष्य शरीर को लेकर देकर कठिन तपस्याओं को करने में असमर्थ

होगे और छोड़े परिधम से ही अत्यधिक पुण्य का लाभ होने से इसी तीर्थ में स्नान कर और इसी तीर्थ के देवता का ध्यान कर अपनी २ अर्धाङ्गिण गति को प्राप्त करलेंगे इसलिये और तीर्थ तथा देवताओं का प्रभाव कम हो जायगा । परन्तु परमकरुणाकर लोकानुमहफारी भगवान् स्कन्ददेव ने कलियुग के वास्ते इस गुप्त तीर्थ को प्रकट कर दिया । इसी प्रकार अर्थात् जैसे कि सत्ययुग में कपिलाश्रम प्रसिद्ध था वैसाही त्रेता में मयाग प्रसिद्ध हुआ और द्वापर में पुनरराज की प्रसिद्धि हुई परन्तु कलियुग में कपिलतीर्थ गुप्त होने से गंदा ही का केवल महात्म्य रहा । इस प्रकार युगक्रम से पृथ्वी में तीर्थों की प्रसिद्धि हुई ॥ २४, २५ ॥

सर्वतीर्थकलावाप्तिकारणं परमन्त्विदम् ॥

तावत्प्रभा तारकाणां यावत्सूर्यो न दृश्यते ॥ २६ ॥

तावन्ति सर्वतीर्थानि यावदेतन्नमन्यते ॥

परममुत्कृष्टमिदं कपिलतीर्थन्तु सर्वतीर्थकलावाप्तिकारणम्
अथ दृष्टान्तोपमा यावत्सूर्यो न दृश्यते अर्थात्सूर्योदयो न भवति
तारतारकाणामन्तर्यमापदगूणां नक्षत्राणां प्रभा जायते तथैव
यावदेततीर्थं नमन्यते तावन्ति सर्वतीर्थानि, अर्थात् नमन्यमानेऽस्मि
न्तीर्थे शेषाणां सर्वेषां तीर्थानाम्प्रभावोऽप्यनगोभवतीति ॥

यह उक्त तीर्थ सब तीर्थों के पल्ल प्राप्त का हेतु है, यहाँ एक दृष्टान्त है कि जबतक सूर्योदय नहीं होता तबतक ही अल्प प्रकाशक तनु तारों की उज्ज्वलता आकाश में व्याप्त रहती है और सूर्योदय होनेही तब तारागण मन्द हो जाते हैं वैसे ही जब तक इस तीर्थ का ज्ञान नहीं होता तभी तक और सब तीर्थों का महत्त्व प्रचलित रहता है इस तीर्थराज के महत्त्व का ज्ञान होनेही सब तीर्थों का महत्त्व मन्द हो जाता है ॥

अथ किञ्चित्तु महिमा तवाग्रेवर्ण्यते मया ॥ २७ ॥
सकलो वेदविदुषां यतोवाचामगोचरः ॥

अथ तवाग्रेतु मया किञ्चिन्महिमा वर्ण्यते ॥ २७ ॥ यतः
सकलः सम्पूर्णमहिमा वेदविदुषां वेदविदामपिवाचामगोचरः
वेदविदोपि वक्तुमसमर्था इति भावः ॥

अब तुम्हारे सम्मुख इस तीर्थ की महिमा का कुछ वर्णन मैं करता
हूँ ॥ २७ ॥ क्योंकि समग्र वर्णन वेदविज्ञाता भी नहीं कर सकते ॥

अन्यत्र दशभिर्वर्षैर्यत्पुण्यं जायते नृणाम् ॥ २८ ॥
तदेकेन दिनेनैव जायते वसतामिह ॥

अन्यत्रान्यस्मिन्तीर्थे नृणां दशभिर्वर्षैर्यत्पुण्यं जायते ॥ २८ ॥
इद्वसतां तेषां तदेकेनैव दिनेन जायते ॥

और सब तीर्थों का १० वर्ष सेवन करने से जो फल मनुष्य प्राप्त
करते है वह यहां एक दिन के सेवन से ही प्राप्त होजाता है ॥

अविमुक्ते ज्ञानदानमुक्तिः पुंसां प्रजायते ॥ २९ ॥
ज्ञानम्विनाप्यत्र मुक्तिः प्राप्यते निघतं नरैः ॥

अविमुक्ते वाराणस्यां ज्ञानदानात्पुंसां मुक्तिः प्रजायते ॥ २९ ॥
अथ कपिलं तीर्थं ज्ञानम्विनापि नरैर्नियतं निरचयेन मुक्तिः प्राप्यते ॥

अविमुक्त वाराणसी क्षेत्र में भीविश्वनाथ के ज्ञानोपदेश से मनुष्य
की मुक्ति होती है “ कारयाम्भरणमुक्तिः ” यह जो मर्याद वाक्य
है इगद्वा भाव यह है कि कार्यों में मरनेवाले को ममवान् छंकर जी
ज्ञान देकर मुक्त कर देने हैं गोस्वामी तुलसीदासजी भी अपने ममचरित-
मानस में लिखते हैं कि “ मशामंत्र जेदि जका मदेशू । कारीः मरण
मुक्ति उदेशू ” अन्यथा “ अने ज्ञानान्न मुक्तिः ” अर्थात् ज्ञान

बेना मुक्ति नहीं होती इस श्रुति का व्यभिचार होता है : परन्तु इस कपिलतीर्थ में ज्ञान बिना ही मुक्ति प्राप्त होजाती है ॥

मुक्तिभूमिरियं नित्या यज्ञभूमिरियं परा ॥ ३० ॥
 योगभूमिरियं शुद्धा कामिनां भोगभूमिका ॥
 महापातकयुक्तानां पापिनां पापमोचिका ॥ ३१ ॥
 सदाचारवतां पुंसां परमास्वर्गभूमिका ॥
 जपानुष्ठाननिष्ठानां जपसिद्धिकरी सदा ॥ ३२ ॥
 तपस्विनां महाभाग ! तपस्सिद्धिप्रदायिनी ॥
 भगवद्भक्तिकामानां महाभक्तिकरीपरा ॥ ३३ ॥
 कासाहो कामानां लोके यात्र न प्राप्यते नरैः ॥
 सांख्ययोगमयीभूमिः सांख्यचार्योश्रितायतः ॥ ३४ ॥

(स्पष्टार्थः इमे श्लोकाः)

हे महाभाग ! इस कपिलतीर्थ की यह भूमि नित्या अर्थात् अनपायिनी मुक्ति को देनेवाली परा उत्तमा यज्ञभूमि शुद्धा योगभूमि और विलासियों की भोगभूमि है एवं महापातकियों के पापों का नाश करने वाली है तथा सदाचारियों की परमा स्वर्गभूमि है जपानुष्ठान में निष्ठ मनुष्यों के जप यज्ञ की सिद्धि करनेवाली, तपस्वियों के तप की सिद्धि देनेवाली है, और भगवद्भक्तिकामनावालों को परा भक्ति देने वाली है कौन सी ऐसी कामना है जिसको यहां मनुष्य नहीं प्राप्त कर सकता ! यह सांख्यचार्य कपिलश्रुति की आश्रयभूमि है इसलिये सांख्ययोगमयी है ॥ ३०, ३१, ३२, ३३, ३४ ॥

अथ सद्गुरुणा प्रोक्तं विना ज्ञानमवाप्स्यते ॥

नित्या नित्यविद्येकोहि तीर्थस्यास्य प्रसादनः ॥ ३५ ॥

किम्पृच्छकृत्या मुनिश्रेष्ठ ! विद्युपामप्रनः सदा ॥
एतादृक् पाप हृत्तीर्थं नभूतं न भविष्यति ॥ ३६ ॥

(स्पष्टार्थाविर्माश्लोकैः)

इस तीर्थ में गुरु के उपदेश बिनाही सद्ज्ञान की प्राप्ति होती है और इस तीर्थ के प्रसाद से संसार में क्या नित्य है ? क्या अनित्य है ? इसका भी विवेक हो जाता है । हे मुनिश्रेष्ठ ! विद्वानों के सम्मुख बहुत कहने की आवश्यकता नहीं होती, सारांश यह है कि ऐसा पापघाती तीर्थ आज तक न हुआ न भविष्य में होगा ॥ ३५, ३६ ॥

समीरणोपि संमृज्य कपिलायतनाम्बुभिः ॥
नाधन्यं स्पृशते लोके नरं मृदुं सकल्मषम् ॥ ३७ ॥
कपिलाजलसंयोगाद्यतोऽसौ पापहामतः ॥
तस्माद्विहाय पाप्मानं याति वायुस्त्वरान्वितः ॥ ३८ ॥
(स्पष्टार्थाविर्मा)

वायु भी इस कपिलायतन के जल से संमार्जित होकर निन्दित तथा मूर्ख और पापयुक्त मनुष्य को स्पर्श नहीं करती ॥ ३७ ॥ क्योंकि कपिलालय के संयोग से वह पापनाशक हो जाता है इसलिए पानी मनुष्य को छोड़कर वेग से आगे चली जाती है ॥ ३८ ॥

कपिलालय संस्था ये प्राणिनः स्थिरजङ्गमाः ॥
सर्वे मुक्तिमवाप्स्यन्ति सत्यं जानीहि सत्तम ॥ ३९ ॥
(स्पष्टार्थः)

हे सत्तम ! कपिलालय में रहनेवाले जितने स्थिर और जंगम प्राणी हैं वे सब मुक्त हो जाते हैं इस बात को सत्य जानो ॥ ३९ ॥

इदं गोप्यं कृतं तीर्थं त्रिषौकोभिः पुरातने ॥
ततः केचिन् जानन्ति विनाशिनोः प्रमादतः ॥ ४० ॥

इदं तीर्थं पुरातने पूर्वस्मिन्काले दिवौकोभिः दिवमेवौकोगृहं
येषान्तैः “ द्योदिवौ द्वे स्थिरामित्यमरः ” श्लोकस्मृतिनिष्ठाश्रयेचे-
त्तमरः। गोप्यं कृतं गोपितमित्यर्थः । ततश्चरभ्य दिप्योः प्रसादतो
विनार्थाद्भगवत्कृपाविरहेण केचिन्निहि जानन्ति ॥ ४० ॥

इस तीर्थ को पूर्व समय में देवताओं ने गुप्त कर रखा था
तब से बिना विष्णुभगवान् की कृपा के कोई नहीं जानता है ॥ ४० ॥

अस्मिन्स्थाने कृतं पुण्यं परार्द्धगुणितं भवेत् ॥

विना पापं हि विप्रेन्द्र ! त्वयि गुण्यं मयोदितम् ॥ ४१ ॥

हे विप्रेन्द्र ! अस्मिन् स्थाने तीर्थे कृतं पुण्यं विना पापं
पापराहित्यं परार्द्धगुणितमसंख्यामितिभावः भवेत् । त्वयि मयेदं
गुण्यं गुण्यमुदितम् ॥ ४१ ॥

हे विप्रवर ! इस स्थान में जो पुण्य किया जाता है वह
विनापाप परार्द्ध गुणित होता है अर्थात् असंख्य होता है यह बहुत
गुप्त वस्तु है जिसको मैं तुमसे कहता हूँ ॥

तथापि न हि कर्मेव्यं जानता पातकं क्वचित् ॥

अद्या पापकरणं न हि वेदानुशासनम् ॥ ४२ ॥

(स्पष्टार्थः)

तथापि जान कर कभी पाप नहीं करना चाहिये क्योंकि अद्या
से पाप करना वेदाशा से विरुद्ध है ॥ ४२ ॥

अस्मिन्तीर्थं कृतं पापमग्नलानं न संशयः

जले जलं पुद्गुशकं जले लीनं यथा भवेत् ॥ ४३ ॥

(स्पष्टार्थः)

अंग्रेजों इन से निकला हुआ पुद्गुशक (फेन) जल में ही
सब होयाना है उभी इमार इन तीर्थ में किया हुआ पाप इसी
तीर्थ में सब होयाना है इनमें संदेह नहीं ॥ ४३ ॥

एव तीर्थस्य मदिमात्रवाग्योत्तर उच्यते ॥

सम्प्राप्तेऽयं सदा सद्भिर्देवः पुण्यमनन्यकम् ॥ ४४ ॥

(अर्थः)

इस तीर्थ की मदिमा गवताजीव है अर्थात् वाक्यनीति है तथापि इनका कहना कि इसके सेवन का अनन्त पुण्य है इमानी साक्षिचारवालों की सरा सेवन करना चाहिए ॥ ४४ ॥

सर्वकालं पुण्यमिदं चानुष्मस्ये विरोधतः ॥

तत्रापि कार्तिकेमासि तत्रप्रान्त्येषुपुत्रसु ॥ ४५ ॥

दिनेषु सुमहापुण्यं कार्तिक्यां यत्पुनर्द्युवे ॥

(अपमपिस्पष्टार्थः सादृश्लोकः)

ऐसे तो सदाही इस तीर्थ के सेवन का पुण्य है परन्तु चैमासे में सेवन करने का विरोध माहात्म्य है उनमें से भी कार्तिकमास में सेवन का फल अधिक होता है कार्तिक में भी अन्य के पांच दिनों (भाष्मपंचक) में बहुत ही अधिक पुण्य होता है ॥ ४५ ॥ एवं कार्तिकी अर्थात् कार्तिक की पूर्णिमा को जो फल होता है उसे पुनः कहता हूं ॥

कार्तिक्यां पौर्णमास्यां यः स्नाति श्रीकपिलालये ॥ ४६ ॥

तस्य पुण्यस्य माहात्म्यं नालं वक्तुं शिवः स्वयम् ॥

(स्पष्टम्)

कार्तिक की पूर्णिमा के दिन श्री कपिलालयधाम में जो स्नान करता है उस पवित्र पुरुष के माहात्म्य को साक्षात् शिव भी नहीं कह सकते और किसको कहें ॥

किम्प्रोक्तेन महोदेव ! पुनरुक्तया भृशम् ॥ ४७ ॥
काविलस्नानमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

(१५४४)

हे महोदेव ! बारबार कही हुई बात को ही दुहराने से कुछ लाभ नहीं, मेरा कथन यही है कि कविलायतन में स्नान मात्र से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त होजाता है ॥ ४७ ॥

इदं मया ते किंपदेव वर्णितं तीर्थस्य माहात्म्य-
मनुत्तमं मुने ॥ शेषोपनिशेषतयास्य वर्णने विशेषशक्ति-
र्नहिजातुसंभवेत् ॥ ४७ ॥

हे मुने ! इसमनुत्तम तीर्थस्य माहात्म्यं किंपदेव किंचिदेव
ते तुभ्यं मया वर्णितम् अन्यथा शेषोपि जातु कदाचित् अस्य
तीर्थमाहात्म्यस्य निरशेषतया वर्णने विशेषशक्तिर्नहिसंभवेत् यदि
शेषोपनिशेषतया वर्णने विशेषशक्तिर्नहिसंभवेत् यदि
शेषोपनिशेषतया वर्णने विशेषशक्तिर्नहिसंभवेत् ॥ ४८ ॥

हे मुने ! इस सर्वोत्तम तीर्थ माहात्म्य को तुमसे मैंने कुछ ही
वर्णन किया है क्योंकि शेषोपनिशेषतया वर्णन नहीं कि कभी
इसको पूर्ण रीति से वर्णन कर सकें तो श्रीगौ की क्या कथा है ॥ ४८ ॥

इति श्रीरामकन्दपुराणे स्कन्दामृतसप्तम्यादे कविलायतनमाहात्म्ये
तीर्थवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।



चतुर्थाध्यायकथारंभः ।



(गूढ उपाय)

इत्युक्त्वा तीर्थमाहात्म्यं स्कन्दः कुम्भोद्भवं पुनः ॥
प्रत्युवाच कथारिग्रास्तीर्थमाहात्म्यमूचिकाः ॥ १ ॥

एतर्शनकादीन् श्रोतॄन् वदति-यत् स्कन्दः इतिर्वचं
माहात्म्यमुक्त्वा पुनस्तीर्थमाहात्म्यमूचिकाभिवाः कथाः पुनः
कुम्भोद्भवमगस्त्यप्रत्युवाच ॥ १ ॥

सूत अपि अपने श्रोता शौनकादि श्रुतियों से बोले कि मगध
स्कन्द ने इस प्रकार तीर्थ माहात्म्य को कह कर पुनः इस तीर्थ
की माहात्म्यसूक्त विचित्र कथाओं को अगस्त्य श्रुति से कहा ॥ १ ॥

पुनर्मनः प्रत्ययार्थमितिहासानिमान्मुने ॥
शृणु त्वं सावधानः सन् श्रद्धानोविधानतः ॥ २ ॥

हे मुने ! पुनर्मनः प्रत्ययार्थं मनसः प्रतीतिलाभाय श्रद्धानः
सावधानः सन्निमानितिहासान्विधानतस्त्वं शृणु ॥ २ ॥

हे मुनि ! पुनः अपने मन की प्रतीति वास्ते श्रद्धायुक्त और
सावधान होकर इन इतिहासों को जिनको मैं आगे कहूँगा
विविपूर्वक तुम सुनो ॥ २ ॥

पुराकल्पे महाभाग तपस्विवरसद्वसु ॥
पदकन्याः किलसंजाता रूपमाधुर्य्यसंयुता ॥ ३ ॥

हे महाभाग ! पुराकल्पे अस्मात्कल्पात्पूर्वस्मिन्कल्पे तपस्वि
वरसद्वसु रूपमाधुर्य्यसंयुताः किल पदकन्याः संजाताः ॥ ३ ॥

हे महाभाग ! प्राचीन समय में तपस्वियों के गृह में रूप और माधुर्य गुणों से युक्त ६ कन्याएं उत्पन्न हुई ॥ ३ ॥

सर्वास्वमानवयसः परस्परहितैरताः ॥

चन्द्राननास्सुकेशान्ताः पद्मोत्पलसुगन्धयः ॥ ४ ॥

(स्पष्टार्थः)

ये ६ कन्याएँ समान वयस् की थी परस्पर प्रेमभाव से रहती थी उनके पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर और उज्ज्वल मुख से सुन्दर केश थे और शरीर की स्वाभाविक सुगन्ध कमल के पुष्प के सदृश थी ॥ ४ ॥

सर्वास्ता मृगनाम्नाद्यः कोमलाद्गन्धः पिकस्वराः ॥

फलाफल,पशुशलाः प्रवालमृदुलाद्गन्धः ॥ ५ ॥

(स्पष्टार्थः)

उन कन्याओं के नेत्र बालमृगों के नेत्र के सदृश थे, अन्न कोमल और मर कोकिल के सदृश थे एवं अनेक कन्याओं में सुगन्ध थी, उनके पर प्रवाल के सदृश मृदुल मनोहर थे ॥ ५ ॥

गामां स्व ममीदृषामुपनीविशताम्रजेन् ॥

जिनके रूप को देखकर वनी भी विशुद्ध को प्राप्त होकर थे ।

गन्धविधाः कुमार्यस्ताः मिथः सख्यमुपासताः ॥ ६ ॥

मिथः ब्रीहन्ति भाषन्ते मिथोपास्मिगृहान्मिथः ॥

मिथोमिथः परमैश्वर्या भुङ्क्ते भोजयन्मिथ ॥ ७ ॥

मिथोश्वालेष्वेयान्नि मिथः स्नान्ति नर्दन्ति ॥

मिथोपने विहरणं कुर्वन्तिपरकन्दराः ॥ ८ ॥

मिथोगायन्ति गीतानि सन्निधौशेरतेमिथः ॥

एवं तासां प्रीतिरभूत् पूर्वजन्मप्रभावतः ॥ ६ ॥

(स्पष्टार्थः इमे श्लोकाः)

इस प्रकार रूप माधुर्यादि गुणों से युक्त वे कुमारिण्यें परस्पर सखित्व भाव को प्राप्त हुईं । साथ साथ खेलतीं, साथ साथ बात करतीं, एक साथ घर को जातीं, परस्पर प्रेम के साथ एक दूसरे को खिलाती और खाती थीं एवं साथ साथ देवदर्शन को जाती थीं, साथ साथ नदी के जल में स्नान करने जाती थीं, एक साथ मित्र सुन्दर २ मधुर गीतों को गाती थीं और एक साथ सोती थीं । इस प्रकार का परस्पर प्रेम उनको पूर्वजन्म के प्रभाव से हुआ था ॥ ६, ७, ८, ९ ॥

सुरभ्यं रममाणास्तास्तपस्विवरकन्यकाः ॥

मुग्धभावं परित्यज्य किञ्चिद्विदग्ध्यमागताः ॥ १० ॥

तास्तपस्विवरकन्यका एवं सुरभ्यं रममाणा मुग्धभावं परित्यज्य किञ्चिद्विदग्ध्यं विदग्धभावमागताः प्राप्ताः ॥ १० ॥

ये तपस्वियों की कन्याएं इस प्रकार सुरभ्य बालक्रीड़ा करते हुई अपने मुग्ध भाव अर्थात् कैशोर अवस्था को त्याग कर विदग्ध अवस्था अर्थात् तरुणावस्था को प्राप्त हुईं ॥ १० ॥

तामां नामानि यक्षयामि शृणुमे द्विजसत्तम ॥

मन्दा मन्दाकिनी मोदा नर्मदा शुभदा विदा ॥ ११ ॥

(स्पष्टम्)

हे द्विजमगन ! उन कन्याओं के क्या नाम थे तो बताओ । इनमें एक का नाम मन्दा, दूसरी का नाम मन्दाकिनी, तीसरी का नाम मोदा एवं चौथी पांचवी के नाम क्रम से नर्मदा शुभदा और छठवी का नाम विदा था ॥ ११ ॥

तामाम्बुद्विरमूढह्यन् संस्कारात्पूर्वजन्मनः ॥
इन्द्रियाणां हिदमने ब्रह्मचर्यस्य पालने ॥ १२ ॥
अष्टाङ्गयोगेविमले प्राणायामादिसाधने ॥
वैराग्यभावविभवे रागद्वेषविचर्जिते ॥ १३ ॥

(स्पष्टार्थाः)

हे ब्रह्मन् पूर्वजन्म के सद्भासना से इन्द्रियों के दमन करने में,
ब्रह्मचर्य के पालन करने में, विमल अष्टाङ्गयोग के साधन और
प्राणायामादि योगकिया के साधन में एवं रागद्वेष से रहित शुद्ध
वैराग्य भाव में उन कन्याओं की प्रवृत्ति हुई ॥ १२, १३ ॥

एवं धृत्ताश्चिरं कालं गमयामासुरंजसा ॥
सुशीलारशुद्धमनसः पूर्वकर्मविपाकतः ॥ १४ ॥

पूर्वकर्मविपाकतस्तासुसुशीलारशुद्धमनसो मुनिकन्या एवं
पूर्वोक्त्यतेन धृत्ता अंजसा चिरंकालं गमयामासुः ॥ १४ ॥

उन सुशील और शुद्ध चरित्रवाली मुनिकन्याओं ने इसप्रकार
मनों के आचरण में बहुत दिन व्यतीत कर दिये ॥ १४ ॥

कस्मिंश्चित्कालपर्याये समाजोऽभून्महात्मनाम् ॥
प्रपागे महतिच्छेत्रे माघे मकरगेरवौ ॥ १५ ॥

कस्मिंश्चित्कालपर्याये महतिच्छेत्रे प्रपागे मकरगेरवौ माघेमासि
महात्मनांसमाजोऽभून् ॥ १५ ॥

किसी समय माघ मास में जब मकर के सूर्य हुए तो तीर्थराज
प्रपाग में देश देशान्तरों से आये हुए ऋषि मुनि महर्षि और तपस्वी
इत्यादि महात्माओं का समाज एकत्र हुआ ॥ १५ ॥

तत्र त्रैलोक्यसंस्थानास्सर्वे लोकास्समागताः ॥
 देवा देवर्षयो देव्यो ब्रह्मन् ! ब्रह्मर्षयोऽमला ॥ १६ ॥
 राजानश्च तथा मर्त्याः सर्वे सत्पुण्यमानसाः ॥
 तद्भाग्यं यथा काले ससुः प्रीताः सितासिते ॥ १७ ॥

(स्पष्टार्थां)

हे ब्रह्मन् ! त्रैलोक्य में रहनेवाले सभी देवता, देवर्षि, देवियाँ और ब्रह्मर्षि एवं राजालोग तथा साधारण मनुष्य सत्य और पवित्र मन से उस समाज में एकत्रित होकर सम्पूर्ण माघ मासभर उचित समय से प्रसन्नतापूर्वक स्नान करते रहे ॥ १६, १७ ॥

तत्रताः पूर्वमुदिता मुने ! पद्ममुनिकन्यकाः ॥
 स्नानार्थं समुपायाता स्तीर्थराजे जितेन्द्रियाः ॥ १८ ॥

हे मुने ! तत्र तस्मिंस्तीर्थराजे प्रयागे पूर्वमुदिताः पूर्वोक्ताः जितेन्द्रियास्ता पद्ममुनिकन्यकाः स्नानार्थं समुपायाता आगतवन्तः ॥ १८ ॥

हे मुनि ! अपनी इन्द्रियों को बर में रखनेवाली ६ मुनिकन्याएँ जिनकी चर्चा पहले कर आया हूँ वे भी उस तीर्थराज प्रयाग में स्नान करने के लिए आई ॥ १८ ॥

आगत्य विधिना ससुर्माघे मासि सितासिते ॥
 सदा समाजम्परयन्त्यधेरुर्भोजितलोचनाः ॥ १९ ॥

आगत्य तत्र सितासिते शुक्ले पक्षे कृष्णे पक्षेय समस्ते माघे मासि विधिना स्नाता एवं विषयादिभोगलिप्तादिताः परमप्राणि मन्त्रं स्नानान्वाग्भोजितलोचनास्सदा समाजं परयन्त्यधेरुः ॥ १९ ॥

वहां आकर समस्त माघमासभर विविधपूर्वक स्नान करती रहें और सतत परब्रह्म की चिन्तना करती हुई तथा समाज को देखती हुई भ्रमण करती रहती थीं ॥ १९ ॥

दान जाप्य व्रत स्नान ध्यान योगादि तत्पराः ॥
मासमेकंजना स्तब्धं तत्र स्थितिमरोचयन् ॥ २० ॥

(स्पष्टम्)

उस समाज में आये हुए सभी लोगों ने दान जप व्रत स्नान और ध्यान आदि कार्यों में तत्पर होकर एक मास पर्यन्त वहां रहने की इच्छा प्रकट की ॥ २० ॥

कदाचिद्वरकन्यास्तासमाजे महदन्तिके ॥
विष्णुगाथाः प्रगायन्तं प्रीत्यासुस्वरमुच्चकैः ॥ २१ ॥
आलिङ्ग्यमहतीम्बीणां सप्तस्वरविभूषिताम् ॥
घादयन्तम्मृदायुक्तं स्वरम्वह्यसुखालयम् ॥ २२ ॥
धुन्वानं निजमूर्धानं किशोरवयसान्वितम् ॥
ददृशुर्नारदं विप्र ! गानविद्या-विशारदम् ॥ २३ ॥

हे विप्र ! महदन्तिके के तस्मिन्समाजे विचरन्त्यस्ता वरकन्याः कदाचित् कस्मिंश्चित्समये प्रीत्या उच्चकैः उच्चस्वरेण सुस्वरं यथा भवति तथा विष्णुगाथाः भगवतोविष्णोर्गुणानुवादान् प्रगायन्तं सप्तस्वरविभूषिताम् सप्तभिर्निषादरूपगान्धार खट्ज मध्यम, धैवत, श्रमेतिस्वरैर्विभूषिताम् स्वकीयाम्महतीम्बीणामालिङ्ग्याङ्गेनिधाय घादयन्तम्मृदायुक्तं सुस्वरं सुलयम्घादयन्तं ताला-
रपर्याये गानस्य कालं क्रियमाने समागते निज मूर्धानं धुन्वानं गानविद्या विशारदं किशोरवयसान्वितम्मृदायुक्तं हर्षोल्लासितविग्रहं नारदं ददृशुः ॥ २१, २२, २३ ॥

उग महागजाज में विवर्ती हुई उन कन्याओं में किसी ने
 गमय में प्रेम भी उभावर से विष्णु भगवान् के गुणानुसारों को गतें
 और निराद, अशम, मान्यार, मदत, मन्मथ एवं भवन की
 पवनपरमेश्वर श्वरों के भरो से विवर्तित अपनी शिखर कंगो में
 आह में ले प्रदानन्द के गमान आनन्दशायक लय को बजाने तथा तन
 के समग्र अपने गिर को कंगाने हुए विष्णुवन्दन, प्रमत्त बह
 नागद मुनि को देखा ॥ २१, २२, २३ ॥

एष्या च सुमुहुरस्तर्याः कामवाण्यशंगताः ॥

योगमार्गम्यनिन्दन्त्यः स्तुवन्त्यो भोगभूमिकाम् ॥ २४ ॥

एवम्भूतं मुनिं नारदं एष्या चकाराजितेन्द्रिया अपिताः
 तर्था कन्यकाः कामवाण्यशंगता योगमार्गम्यनिन्दन्त्यो भोग
 भूमिकां स्तुवन्त्यः सुमुहुरः मोहप्राप्ताः ॥ २४ ॥

ऐसे मुन्दर स्वरूप नागदजी को देखकर काम के बर्णभूत होकर
 वे मुनिकन्याएं मोहित होगई और योग-मार्ग की निन्दा तथा विषय
 भोग की स्तुति करने लगी ॥ २४ ॥

एवं योगम्परित्यज्य अष्टास्ता मुनिकन्यकाः ॥

विष्णुमाया हृतात्मानः पतिता योगभूमितः ॥ २५ ॥

महाकामग्रहप्रस्ता विह्वला ग्रहली कृताः ॥

कामवासनाया विद्धा मृताः स्वायुष्य संक्षये ॥ २६ ॥

(स्पष्टार्थ)

इस प्रकार वे मुनिकन्याएं योगमार्ग से अष्ट हो गईं विष्णु
 भगवान् की माया ने उनकी आत्मा को हरण कर योग भूमि से गिरा
 दिया और महाकामरूपी ग्रह से ग्रस्त होकर वे विह्वल और उन्मत्त
 होगई एवं कामवासनासे विद्ध होकर सबकीसब कन्याएं मर गई ॥ २५, २६ ॥

योगभ्रष्टास्ततो जाता मंहतांश्रीमतांकुले ॥

विप्राणां कुलजानान्ताः याः पूर्वं सख्यमश्रिताः ॥ २१ ॥

योगभ्रष्टाः कन्यकाः यतः पूर्वं पूर्वस्मिन्मये सख्य-
श्रिताः पारस्परिक प्रेम भावंगतायास्तन् अतस्ततोऽर्थान्मुनि-
मृत्युम्राप्य कुलजानाम्मंहतांश्रीमताम्विप्राणां कुले जाताः स-
पुनर्जन्मसम्प्राप्ताः ॥ उक्तंचापि “ शुचीनां श्रीमतां गेहे
विद्वज्जनस्पवा । अथवा श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टो हि जायते ” ॥ २१ ॥

वे कन्याएं जो पूर्व जन्म में परस्पर प्रेम भाव से रहा करती
योग से भ्रष्ट होकर मर जाने पर उन्होंने ने महाकुलीन एवं श्री-
ब्राह्मणों के कुल में एक साथ ही पुनर्जन्म ग्रहण किया ॥ २० ॥

जामदग्न्यप्रदत्ता, या, धरा, विप्रेषुमंस्थिता ॥

तद्वरास्वामिनांगेहे जातास्तामुनिकन्यकाः ॥ २२ ॥

जमदग्नेः अपरपं जामदग्न्यस्तेन प्रदत्ता या धरा वि-
मंस्थिता । जामदग्न्यः परशुरामः एक विंशतिवारं निःसत्रां
कृत्वा सर्वपृथिवीम्राक्षसेभ्यो ददावितिकथा पुराणप्रसिद्धा । त-
स्वीमनामर्थाजामदग्न्यप्रदत्तधरानायकानांगेहेता मुनिक-
जाता जन्म प्राप्ताः ॥ २२ ॥

जमदग्नि अग्नि के पुत्र परशुराम ने इक्षीमवार सत्रिय रा-
को मारकर पृथ्वी निःसत्र कर दी । पृथ्वी पर कहीं सत्रियों का
निराण तक नहीं रहा तो ब्राह्मणों को पृथ्वी दान करके ने
यह कथा पुराणों में विस्तारपूर्वक है । उसी जामदग्न्य (परशु-
राम) की दी हुई पृथ्वी के स्वामी ये ब्राह्मण थे जिनके गृह में
कन्याओं ने पुनर्जन्म ग्रहण किया ॥ २२ ॥

यत्र वै कपिलंक्षेत्रं महापुण्यं महीतले ॥

एक योजन विस्तारं मध्यतः पादयोजनम् २६ ॥

जामदग्न्यः सर्वा पृथ्वीमेकस्मिन्वैकदेशनिवासिब्राह्मणेन
एव नादात् किन्तु यस्मिन् यस्मिन्दे शेषं यं राजानमवर्धात् तस्य
भुवन्तदेशवासिब्राह्मणेभ्यः प्रादात्तथैवास्मिन्मरुकान्तारशासि-
णाम्भूमिमेतदेशनिवासिभ्योददौ यत्र ते ब्राह्मणा निवासया
मासुस्तत्रैकयोजनविस्तारं मध्यतः पाद योजन मानं महा पुण्यं
पवित्रं कापिलं कपिलसम्बन्धि क्षेत्रं महीतले अस्ति ॥ २६ ॥

परशुराम ने जीती हुई समग्र पृथ्वी एक ही किसी ब्राह्मण को
अथवा एकही किसी देश के निवासी ब्राह्मणों को नहीं दी, क्योंकि
ऐसा किया होता तो पुराणों में अवश्य इसकी कोई कथा मिलती।
इसलिये यह अनुमान होता है कि जिस देश अथवा राजधानी को
जीता वहां की पृथ्वी उसी देश के निवासी ब्राह्मणों को दान कर दी, इसी
प्रकार इस मरुकान्तार प्रदेश को जीतकर वहां की भूमि इसी देश के
अर्थात् कपिलक्षेत्र के निवासी ब्राह्मणों को ही दान कर दी जो कपिलक्षेत्र
पृथ्वी पर महापवित्र परिगणित किया गया है जिसकी सीमा
चारोंतरफ एक योजन की लम्बाई चौड़ाई पर है और मध्य में चतुर्भुज
योजन अर्थात् कोस भर के दीर्घ विस्तार में वह धाम है ॥ २६ ॥

मध्यतः क्रोशमाद्यंतज्ज्योति रूपं सनातनम् ॥

मृगास्तत्र विमुच्यन्ते सद्यः प्रक्षीणयन्धनाः ॥ २७ ॥

(१) पादकवचः ! दिग्दूष्ये मयादानुसार अन्य तीर्थरक्षकों की भांति यह कपिल
देश के शिव में उपरीक २६ य ३० के श्लोक में इस पुण्यक्षेत्र का मान ही
सम्बद्धता दर्शाया हो रहा है और इस क्षेत्र का केन्द्रस्थान, मन्दिर व जनशरण की पूर्ण
व्यवस्था ही माना गया है उसके चारों ओर १ कोस की सीमा पर्यान्तरफल एक कोस
पर १ योजन स्थान है । इस सीमा के अन्दर पूर्णसर्वव्यवस्था सम्पूर्ण करके दी।

मध्यतः क्रोशमात्रमिति स्पष्टम् ॥ ३० ॥

योजन के चतुर्थांश परिमित मध्य में कपिलमुनि का धाम है और योजन ४ कोस को कहते हैं इसका चतुर्थांश एक कोस हुआ । अतः इस श्लोक में उसी पूर्वोक्त मध्यवर्ती धाम का वर्णन करते हैं कि मध्य में कोसमात्र का जो क्षेत्र है वह कपिलधाम है, ज्योतिरूप है, और सनातन है । उस धाम में देह त्याग करनेवाले उसी समय अपने संसारी कर्मबन्धनों को त्याग कर मुक्त हो जाते हैं ॥ ३० ॥

तद्राममीम सामीप्ये विप्रक्षेत्राणि सन्निवै ॥

तेषु क्षेत्रेषु तेषिमाः स्वदासैः शुद्रजैस्सह ॥ ३१ ॥

घापयन्ति सदाधान्यं स्वकुटुम्बस्य पुष्टये ॥

प्रावृट् काले महामेघजलमालासमाकुले ॥ ३२ ॥

(स्पष्टार्थः)

उस धाम की सीमा के समीपही में उन ब्राह्मणों के मैन हैं वे ब्राह्मण जब बरसात के दिनों में पूरी वर्षा होने लगती है और आकाश सपन एवं सजल भेषों से आच्छादित हो जाता है तो अपने पुटुबों

विशेषकर अपने घाँस से दूक होकर दुग्ध के भाँस होत हैं वहाउक कि जो अपने शुद्ध घाँसदुग्ध से बहा घाँस करने की लज्जा से मरे हैं वे भी मृत की प्राप्ति होता है और एक बोग भारी पवित्र भूमि के बायीं ओर ४ बोट की लंबा तक इसी पवित्र क्षेत्र ही की लंबा मिलती है । जिसे एक देश में " कोल " देश के नाम से कहते हैं किसी वर्षा है समुद्रिय इस ४ बोट की भूमि को राज्य में वास्तविक रूप कोलराधेनी बुझि जाती है इसमें सब प्रकार की वस्तुहिन वा जलहिन बनिज है जोकि कर्षेवित है । इस समय की देश है जो बर पवित्र मेरो के सम्मान को इसी कोल निधित है । इस कोलपरी है वह सब पवित्र दुग्ध है । दम्य जाती है वरने वहाउक इसका नाम वा कि किसी तीर्थ के कोल से बना है । कोल, दास व दासकी जो पूर्ण दूध के कोल होत वह कोलदेवता है जो वा दम्यन से दूध होने के लय व ११ कोल के देश (५२) के भी दूध होलाग वा ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । श्री कृष्णाय नमः ।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । श्री कृष्णाय नमः ।

महा चैत्रं संज्ञायां पादपदः ॥

कार्त्तिके विषयं गानि मयैतानि मनोहरा ॥ ३१ ॥

मन्त्राः प्राच्याः सन्त्याः ॥ मन्त्राः सन्त्याः ॥

नयसन्धिमाहदाः नारमन्त्र्यं नानयः ॥ ३४ ॥

रयान् रयान् विमननशाप्य श्रीदत्तार्थं म कौतुकाः ॥

घंमरचा।मिरी।शुभ्रं मलयहं जग्मुरादनाः ॥ ३५ ॥

गर्भं लोहं मनोदं विमले कार्तिके मामि यदा संप्रेषु धान्यना
 यद्गुण्यदस्मंजागाम्नादाताः संप्रेषुमन्तन्मसारमस्मन्निमनास्मा
 योवनारंभिकावस्थाप्राप्ताः मारमादर्यमानयः परमरूपवत्सो ब्रह्म
 मुक्त्याः संप्रेषुमिषोक्त्य संप्रेषुमप्याजेन स्वान् स्वान् पितृनु
 शाप्य तैराहताः स्नेहेनानुगताः तर्कातुकाः क्रीडनार्थं प्रत्यहं
 जगुः ॥ ३३, ३४, ३५ ॥

सर्वजन मनोहर विगल कान्तिरूपास में जब सेतों में प्रनुर धान्य की सम्पत्ति हो जाती थी तो सेतों की रखवाली के लिए परम उत्सुक हो कर जीवन की प्रारंभिक अवस्था में प्राप्त रूप सौन्दर्य की श्रान्ति वे ब्राह्मण कन्याएं सेत की रखवाली का बहाना करके अपने अपने पितायों से आज्ञा लेकर और उनसे आदृत होकर कौतुक के साथ प्रतिदिन खेलने के लिए जाती थीं ॥ ३३, ३४, ३५ ॥

चटकादि विहंगेभ्यो मृगादिभ्यो दिने दिने ॥

धान्यरक्षां प्रकुर्वन्त्यः श्रीङ्गन्त्यः कौतुकान्विताः ॥३६॥

दिने दिने चटकादिविङ्गेभ्यामृगादिपशुभ्यो धान्यपक्षा
प्रकुर्वन्त्यः कौतुकान्विताः क्रीडन्त्यः खेल्नन्तिस्म ॥ ३६ ॥

वे कन्याएं प्रतिदिन पशु-पक्षियों से धान्य की रक्षा करती हुई बड़े कुतूहल के साथ खेलती थीं ॥ ३६ ॥

सायम्पुन गृहानान्तु यदेच्छाजायतेहृदि ॥

स्वक्षेत्रेभ्यः परावर्त्य समायुक्ताः श्रमान्विताः ॥ ३७ ॥

समागत्य स्ववासांसि तीरेन्यस्यसुमध्यमाः ॥

प्रत्यहं स्नान्ति विप्रेन्द्र ! कापिलेयं सरोवरे ॥ ३८ ॥

हे विप्रेन्द्र ! पुनः सांयं गदा हृदि गृहणामिच्छा जायते तदा समायुक्ताः सदैवगमनशीला श्रमान्विताः समस्तदिवसक्रीडनात् स्थगितासुमध्यमास्ताः स्वक्षेत्रेभ्यः परावर्त्य कापिलेये सरोवरे समागत्य तीरे स्ववासांसिन्यस्य प्रत्यहं स्नान्ति स्नानं कुर्वन्तिस्म ॥ ३७, ३८ ॥

हे विप्रेन्द्र ! सायंकाल में जब घर जाने की इच्छा होती थी तो दिन भर की क्षेत्ररक्षा और खेल से थक कर वे कन्याएं अपने २ क्षेत्रों से परावर्तित हो (लौट) कर कपिल सरोवर पर आती और अपने बम्बों को सरोवर के तीर पर रख कर प्रतिदिन स्नान करती थीं ॥ ३७, ३८ ॥

क्षुधाविष्टा भक्षयित्वा क्षेत्रानीनं फलादिकम् ॥

तत्र प्रक्षिप्यचोच्छिष्टं गृहायोन्ति स्वकान् स्वकान् ॥ ३९ ॥

समस्त दिन परिश्रमात्क्षुधाविष्टास्ताः कन्याः क्षेत्रानीनं फलादिकं भक्षयित्वा तत्रोच्छिष्टं प्रक्षिप्य स्वकान् २ गृहान्यान्तिस्म ॥ ३९ ॥

दिन भर के परिश्रम से भूखी और थकी हुई कन्याएं स्नान करने के अनन्तर क्षेत्रों से लाये हुए फल मूलादि का भक्षण कर उन्मिष्ट को वहां ही छोड़ कर अपने २ घर को चली जाती थीं ॥ ३९ ॥

एवं तासां कुर्वतीनां व्यतीता द्वित्रहायनाः ॥

तद्वारिस्नानपुण्येन परां शुद्धिमुपागताः ॥ ४० ॥

(स्पष्टम्)

इस प्रकार प्रतिदिन स्नान करते हुए कन्याओं को दो तीन व्यतीत हो गए उस सरोवर के जल में स्नान करने के पुण्य से परमशुद्धि को प्राप्त हो गई ॥ ४० ॥

तनस्तथै स्मृतौ जानं पूर्व जन्म विचेष्टितम् ॥

स्वसखित्वंपरंप्रेम योगभ्रंशन्तथैवच ॥ ४१ ॥

ततोऽर्थात्कापिलेयस्नानपुण्याच्छुद्धिप्राप्तानन्तरं पूर्व जन्म विचेष्टितम् स्वसखित्वं परंप्रेम तथैव योग भ्रंशत्वं चकारान्मुनीनि गृहेजन्म, योगादिसाधनं, प्रयागगमनं, नारदेक्षणमित्यादिच सर्वतासां स्मृतौजातम् ॥ ४१ ॥

तदनन्तर अर्थात् कापिलसरोवर में नित्य स्नान करने से जो शुद्धि प्राप्त हुई उसके अनन्तर उन कन्याओं को अपने पूर्वजन्म की सब कथा (अर्थात् मुनिओं के गृह में जन्म लेकर अष्टांग योग की साधना, परस्पर की मैत्री तथा घनिष्ठ प्रेम, प्रयागराज की यात्रा, वहां नारदजी का सौन्दर्य देख मोहित होना, विषय भोग की उत्कटेच्छा से योगमार्ग की निन्दा करते शरीर को त्याग करना और पुनः पवित्र और कुलीन ब्राह्मणों के घर में जन्म लेना) इत्यादि एक एक करके ज्ञात हो गई ॥ ४१ ॥

एवं स्मृतौ प्रवृत्तायां पूर्वस्यां तास्तपोधन ! ॥

दैवेन दुर्विनश्येण मयः पंचत्वमागताः ॥ ४२ ॥

हे तपोधन ! एवं पूर्वोक्त क्रमेण पूर्वस्यां स्मृतौ प्रवृत्तायां पूर्वजन्म स्मृतौ संज्ञातायां दुर्विनश्येणाविचिन्त्येन दैवेन भाग्येन हे तुना मयः सन्तकलणवताः पञ्चत्वमागता अर्थान्मृतायभूयुः ॥ ४२ ॥

हे तपोधन ! जब इस प्रकार पूर्वजन्म की स्मृति प्राप्त हो गई तो अविचिन्त्य दैवसंयोग से तत्काल ही सब कन्याओं ने एक साथ अपने शरीर का त्याग कर दिया ॥ ४२ ॥

तत्तीर्थस्य प्रभावेण योग भ्रष्टा दिवंगताः ॥

पुनरेव मुनीनान्ताः कुलेजाता महात्मनाम् ॥ ४३ ॥

पूर्व भवे योगभ्रष्टा अपितास्तस्य तीर्थस्य कपिलायतनस्य प्रभावेण दिवं स्वर्गगताः पुनः कियत्कालं स्वर्गं सुखं भुक्त्वा महात्मनां मुनीनां कुले एव जाताः ॥ ४३ ॥

वे माक्ष्य कन्याएं पूर्वजन्म में योग से भ्रष्ट हो गई थीं अब उत्तरोत्तर अपोषति को ही प्राप्त होतीं, परन्तु उस कपिलतीर्थ के प्रभाव से स्वर्ग को गईं और वहां कुछ दिनों तक स्वर्गसुख का भोग करके पुनः महात्मा मुनियों के कुल में उन्होंने जन्म ग्रहण किया ॥ ४३ ॥

महा मुनिभिरुदाश्च पुनर्देवर्षिसत्तिभैः ॥

कियत्कालं परंभोगं भुञ्जानाः सहभर्तृभिः ॥ ४४ ॥

स्थितादिष्येषु लोकेषु मोदमानाः प्रभान्विताः ॥

तद्धामनि तदुच्छिष्टं प्रक्षेपोद्भूतदोषतः ॥ ४५ ॥

किञ्चित्कारणमुद्दिश्य पुनस्तपताः स्वभर्तृभिः ॥

पट्येव कृत्तिका जाता भूय संभूयभूरिशः ॥ ४६ ॥

पुनः अर्षान्मुनिगृहे जन्म ग्रहणानन्तरं देवर्षिसत्तिभिर्महा मुनिभिरुदा विवाहिताश्चतः भर्तृभिस्सह कियत्कालं परं भोगं भुञ्जानाः मोदमानाः प्रभान्विताः दिष्येषु लोकेषु स्थिता-निवासमापुः। अनन्तरं तद्धामनि तदुच्छिष्टं प्रक्षेप दोषतः अर्षान् पूर्व स्मिन्भवे माक्ष्य गृहे जन्म संग्राह्य क्षेप्ररक्षामिषीकृत्य श्रीहृन्नाथ

गन्ता गत कन्यादिकं मंगलप्रमाणं कनिन भोगसमामन्त्र क
 स्नाना कन्यादिकं मण्डपिना प्रप्यते मण्डपिष्टे तपस्यविद्वि
 स्तारुभूतदोषादिदमने मुनीनां गृहे स्वमर्तुभिः किमिच्छामवर्ष
 दपसादमुदिरप स्यात् । अनन्तरं ता एव पदकन्याः भूयः मंगल
 भाग्यतिभिस्सागमानन्तरं देवीमृग्याकाशे भूरिगोवाहुन्नेनार
 कृत्तिका कृत्तिका नयत्र म्यगत्ताराः संज्ञाताः ॥ ४४, ४५, ४६ ॥

पुनः उन मुनि कन्याओं का विवाह देवर्षिबुल्य मुनिओं से हुआ
 और उन कन्याओं ने अपने २ स्वामियों के साथ पुत्र दिलों तक उदर
 भोगविनाश किया और पूर्ण प्रमा एवं हर्ष के साथ दिव्यलोक में
 जहां उन मुनियों के रहने का निवासस्थान था वहां निवास किए।
 तदनन्तर पूर्वजन्म में जो कपिलसरोवर के तीर पर फल मूल खर
 उच्छिष्ट प्रक्षेपण किया करती थी उसके दोष से इस योनि में भिनी
 कारण स्वामियों ने उन को त्याग कर दिया । पति से त्यक्त होकर
 उन्होंने ने पुनः अपने शरीर को त्यागकर दिया । तीर्थमें उच्छिष्ट त्याग करने
 का इतना ही फल उनको भोगना पड़ा कि पति से त्यक्त हुईं । अनन्तर कई
 जन्मों के सुकृत वश तथा कपिलाश्रम के शुद्धसरोवर में स्नान करने के
 कारण जो उनके असंख्य पुण्य संचित हो गये थे उन पुण्यों के प्रभाव
 से आकाश में तारा होकर द्वायों कन्याएं विकास करने लगीं जिनको
 कृत्तिका के तारे कहते हैं । ज्योतिषशास्त्र में हुरा के आकार में इन
 तारों की स्थिति बताई गई है ॥ ४४, ४५, ४६ ॥

आकल्पान्तं स्थिता ब्रह्मन्दिविभान्ति महाप्रभाः ॥

महायोगि प्रभावेण महायोगिन्यएवताः ॥ ४७ ॥

तीर्थ स्नानज माहात्म्यं सूचयन्ति निरन्तरम् ॥

हे ब्रह्मन् महायोगिप्रभावेण महायोगिनः कपिलमुनेः प्रसादात्
 । ४ महायोगिन्यो महाप्रभा महाचमत्कार विशिष्टा आकल्पान्तं

दिवि आकाशे स्थिता विमान्ति ॥ ४७ ॥ तथाच निरन्तरं तीर्थस्नानजमाहात्म्यं सूचयन्ति ॥

हे ब्रह्मन् ! महायोगी कपिलमुनि के प्रभाव से महायोगिनी वे कन्याएं महोज्ज्वल तारा रूप धारण कर कल्पान्त तक के लिए आकाश में प्रकाश कर रही हैं ॥ ४७ ॥ और निरन्तर तीर्थस्नान के महात्म्यों की सूचना दे रही हैं ॥

यासां कार्तिकमासस्य सारासार विवेकिनः ॥ ४८ ॥

नाम निर्वचनं चक्रुर्नरा नैरुक्त वेदिनः ॥

तासांस्तन्यं मयापीतं पद्ममुखैर्घटजोत्तम ॥ ४९ ॥

यासां पण्णां कन्यकानां कार्तिक मासस्य सारासार विवेकिनः कार्तिकमासमाहात्म्यवेत्तारो नैरुक्त्वादिनो नैरुक्तशास्त्रज्ञा नरा एकैव कृत्तिकेति नाम निर्वचनं चक्रुस्तासाम्परस्परमातिश्रेयदर्शनादितिभावः । हे घटजोत्तमागस्त्य ! तासांस्तन्यं दुग्धमया पद्मभिर्मुखैः पीतम् ॥ ४८, ४९ ॥

पृष्ठ ६४ के ४४, ४५, ४६ में जड़ोंकी पर विशेष वक्तव्य

(१) बरुनः जन वे कन्याएं योग से पुर होकर मादणों के घर में उत्पन्न हुई और जित्त संवी से आकर सांदवाल के समथ कपिल सरोवर में स्नान कर के अपने २ शुद्ध को जाती थीं जित्त स्नान के पुण्य से पूर्ण जन्म की समुति हुई और तत्काल ही ६ओं ने देहत्याग कर दिया और स्वर्गलोक को गयीं, वही समय इनकी मुक्ति का वाचानु उस तीर्थ में अस्तित्वलग करना ही एक अपराध था जिससे पुनः एक बार मुनि कन्या होकर पतितपारुष्य दण्ड भोगना पड़ा और इसके अनन्तर जन्म-मरण से रहित हो आकाश में तारारूप होकर आनन्दानन्द वास करने लगीं । जित्त भी है कि " नायुक्त जीवने कर्म कला कोटिशर्नैवि " अर्थात् शतशः बंदि कल्प ज्योति होनाएँ पान्नु कर्मों का नारा भोग करने ही से होता है । अथवा " नष्टत्वनां कर्म कलेशभोगः बायाडिना " अर्थात् कर्म का भोग भी शरीर धारण करने ही से होता है । इसीसे सिद्ध होता है कि जन कर्मों का नारा हो जाना है तो शरीर धारण करने को भी कोई आवश्यकता नहीं है और शरीर धारण न करना ही मुक्ति है ।

हे अगस्त्य ! कातिक मास के वास्तव तथ्यों के ज्ञान और निरुप-
शास्त्र के मर्मवेदी विद्वानों ने उन कन्याओं के लगातार कई जन्मे
के परस्पर प्रेम को देखकर छत्रों का एक ही नाम (कृत्तिका) रख
उन्हीं कृत्तिकाओं का दुग्ध में ने अपने ६ मुत्तों से पिया है ॥ ४८, ४९ ॥

नोट—किसी कलर की कथा है कि शंकरजी का विवाह दत्तप्रजापति
की कन्या से हुआ था इसलिये शंकरजी सर्वदेव शिरोमणि होने पर
भी दत्तप्रजापति के जामाता ही थे । एक समय ब्रह्मलोक में देव सभा
हुई जिसमें सभी देवता पहले ही से आए हुए थे, दत्तप्रजापति कुछ
पीछे आए उनके सभा में उपस्थित देख सभी देवताओं ने उठकर
अभिवादन और स्वागत किया परन्तु आदिदेव शंकरजी ने कुछ
भी नहीं किया । अपने जामाता की ऐसी घृष्टता देख दत्तप्रजापति
बहुत क्रुद्ध हुए और उस सभा से चले गए, तब से शंकरजी से कुछ
भी सम्बन्ध नहीं रखते थे । कुछ काल के बाद दत्तप्रजापति ने एक
यज्ञ किया जिसमें शंकरजी को निमंत्रित करके नहीं बुलाया परन्तु
पिता के यज्ञ करने का समाचार सुनकर दक्षपुत्री बिना निमन्त्रण के
ही पिता के घर जाने को उद्यत होगई और शंकरजी से आज्ञा माँगी
शंकरजी अपने श्वसुर के क्रुद्ध होने की गुला कथा कहकर दक्षमुता
को बहुत समझाया परन्तु दक्षपुत्री ने एक न माना और पिता के
घर गई वहाँ जाकर यज्ञ में सब देवताओं का अंश देखा परन्तु
शंकरजी का भाग नहीं देखा और सब किसी ने कुशलमंगल
पूरा परन्तु दत्तप्रजापति ने अपनी कन्या को देखा तक नहीं, इसलिये
दक्ष में प्रति डा और अपना अपमान देव इशों के बर होकर
ये लक्ष्मी में भस्म होगई । यही दक्षमुता पुनः दिवाचन के घर आकर
शंकरजी से हुई और नागद्वी उमकी हस्तेमा देव “ शंकरजी से विवाह
होगा ” इत्यादि कहकर पार्वती को नग्न्या करने का आदेश दिया था ॥

पःसमातुर इतिरूपातो हृष्ट पुष्टश्च सर्वदा ॥

नैष्ठिको ब्रह्मचार्यस्मि तासां योग प्रभावतः ॥ ५० ॥

सेनानीः सर्वदेवानां सर्वासुरनिकन्दनः ॥

सर्वदा तासामेवस्तन्यपानेनाहं हृष्टः पुष्टः पाद्मातुर
इतिरूपात्तथा तासां योग प्रभावतः सर्वदेवानां सेनानीः सर्वासुर
निकन्दनो नैष्ठिको निष्ठावान्ब्रह्मचार्यस्मि ॥ ५० ॥

● पार्वती शंकरजी से विवाह होने के निमित्त तपस्या कर रही थी और इधर तारकामुर एक दानव महापतापशाली ब्रह्मा, विष्णु और महादेव सब से श्रवण्य होकर महाउपद्रव मचा रहा था तब सभी देवता मिलकर ब्रह्मा के साथ विष्णु भगवान् के पास गये और उन दैत्य के बध का उपाय पूछा भगवान् ने कहा कि यह दैत्य और किसी से नहीं मरेगा यदि शंकरजी का पुत्र सेनापति हो और देवताओं की सेना तैयार हो तो इस दैत्य का बध होगा आजकल दक्षमुना हिमालय की कन्या होकर शंकरजी से विवाह होने के निमित्त तपस्या कर रही है और तपस्या की सिद्धि का समय भी आगया है तुम लोग ससैनिकों की सहायता से शंकरजी को विवाह करने के लिए उबन करो इस विवाह से पुत्र उत्पन्न होगा यही तारकामुर को मारेगा ।

तब तारकामुर ने शंकरजी से विवाह करने की बात कही ।

हे अग्रज ! कानिंक माग के वास्तव तथ्यों के ज्ञाता और नि-
 राभ के गर्भवेदी विद्वानों ने उन कन्याओं के लगानार कई ज
 के परस्पर प्रेम को देखाकर दोनों का एक ही नाम (कृतिका) से
 उन्ही कृतिकाओं का दुग्ध मैं ने अपने ६ गुप्तों से पिया है ॥ ४८, ४९

नोट—किसी कलर की कथा है कि शंकरजी का विवाह दक्षप्रजाप
 की कन्या से हुआ था इसलिये शंकरजी सर्वदेव शिरोमणि होने
 भी दक्षप्रजापति के जामाता ही थे । एक समय ब्रह्मलोक में देव स
 हुई जिसमें सभी देवता पहले ही से आए हुए थे, दक्ष प्रजापति कु
 पीछे आए उनके सभा में उपस्थित देख सभी देवताओं ने उठकर
 अभिवादन और स्वागत किया परन्तु आदिदेव शंकरजी ने कु
 भी नहीं किया । अपने जामता की ऐसी घृष्टता देख दक्षप्रजापति
 बहुत क्रुद्ध हुए और उस सभा से चले गए, तब से शंकरजी से कुछ
 भी सम्बन्ध नहीं रखते थे । कुछ काल के बाद दक्षप्रजापति ने एक
 यज्ञ किया जिसमें शंकरजी को निमंत्रित करके नहीं बुलाया परन्तु
 पिता के यज्ञ करने का समाचार सुनकर दक्षपुत्री विना निमन्त्रण के
 ही पिता के घर जाने को उद्यत होगई और शंकरजी से आज्ञा मांगी
 शंकरजी अपने स्वसुर के क्रुद्ध होने की कुल कथा कहकर दक्षमुता
 को बहुत समझाया परन्तु दक्षपुत्री ने एक न माना और पिता के
 घर गई वहां जाकर यज्ञ में सब देवताओं का अंश देखा परन्तु
 शंकरजी का भाग कहीं नहीं देखा और सब किसी ने कुशलमंगल
 पूछा परन्तु दक्षप्रजापति ने अपनी कन्या को देखा तक नहीं, इसलिए
 पीहर में पति का और अपना अपमान देख ईर्ष्या के बर होकर
 योगाग्नि से भस्म होगई । यही दक्षमुता पुनः हिमाचल के घर जाकर
 अवतरित हुई और नारदजी उसकी हस्तरेखा देख “ शंकरजी से विवाह
 होगा ” इतना कहकर पार्वती को तपस्या करने का आदेश दिया था सो*

पद्मानातुर इतिरूपातो हृष्ट पुष्टश्च सर्वदा ॥

नैष्ठिको ब्रह्मचार्यस्मि तासां योग प्रभावतः ॥ ५० ॥

सेनानीः सर्वदेवानां सर्वासुरनिकन्दनः ॥

सर्वदा तासामेवस्तन्यपानेनाहं हृष्टः पुष्टः पाद्मानातुर
इतिरूपातश्च तथा तासां योग प्रभावतः सर्वदेवानां सेनानीः सर्वासुर
निकन्दनो नैष्ठिको निष्ठावान्ब्रह्मचार्यस्मि ॥ ५० ॥

● पार्वती शंकरजी से विवाह होने के निमित्त तपस्या कर रही थी और इधर तारकामुर एक दानव महाप्रतापशाली ब्रह्मा, विष्णु और महादेव सब से अवध्य होकर महाउपद्रव मचा रहा था तब सभी देवता मिलकर ब्रह्मा के साथ विष्णु भगवान् के पास गये और उस दैत्य के बध का उपाय पूछा भगवान् ने कहा कि यह दैत्य और किसी से नहीं मरेगा यदि शंकरजी का पुत्र सेनापति हो और देवताओं की सेना तैयार हो तो इस दैत्य का बध होगा आजकल दक्षमुना हिमालय की कन्या होकर शंकरजी से विवाह होने के निमित्त तपस्या कर रही है और तपस्या की सिद्धि का समय भी आ गया है तुम लोग सप्तर्षियों की सहायता से शंकरजी को विवाह करने के लिए उपन करो इस विवाह से पुत्र उत्पन्न होगा वही तारकामुर को मारेगा । अन्तर सप्तर्षियों ने शंकरजी का विवाह पार्वती से कराया परन्तु कई कोटि वर्ष बिहार में ही बीत गये पुत्रोत्पत्ति की कोई आशा ही नहीं दीस पड़ी और इधर दानवों के घोर उपद्रवों से देवलोक मत्स्य लोक और पावन पर्यन्त हाहाकार मच गया था तब ब्रह्माजी को आगेकर सभी देवता शंकरजी से पुत्र उत्पन्न करने की माँगना करने के लिए कैनाश पर गये वहाँ ऐसा प्रबन्ध था कि शंकरजी का दर्शन ही दुर्लभ था तो अमिदेव को कवच का रूप धारण करा इन्द्रादि सभी देवताओं ने गुफा के अन्दर भेजा इन सभी देवताओं ने देखा कि शंकरजी देवताओं के

श्रीहोनागनननीमनागननम् ।

उन्ही माताओं के द्वारा उन कारों में द्रष्टुं हुआ और
इन नामों में विख्यात हुआ और उन के ही नामों से
तब देवताओं का गन्तव्य हुआ और सभी राजाओं का राज
नैष्ठिक मन्त्रवागी हुआ है ॥ ५० ॥

र विलास में बित डालने का कारण मन्त्र और विष्णु
योग कर अमोघार्थों को स्कन्दिन कर दिया उनको अग्नि
में उठा लिया और भय के मोह गदा में मांग देता जो
आए जब अग्नि को उस भय का जनन से नही मार
तो एक सरकगड़े के बन में उगन दिया बरी स्कन्द
के स्कन्दित योग से उत्पन्न हुए इमलिन उनका नाम स्कन्द
अग्नि के मुख से उत्पन्न हुए इमलिन उनका नाम अग्नि
सरकगड़ों में उत्पन्न हुए इमलिन उनका सरजग्मा, भी कहते हैं
जगह सरकगड़ों में इन की उत्पत्ति हुई उनके समीप ही
पर जाने के लिए रास्ता था उनी रास्ते से प्रतिदिन वे ही
याएँ जो मुनि पत्नी हुई थी स्नान के लिए जाया करी
रोज उन्होंने एक धर्मसुत बालक सरकगड़े के बन में सेलों
उठा लिया तथा इस बालक का मैं रखूँगी मैं रखूँगी कहकर
तनों से दूध पिलाने के लिए लड़ने लगी उस समय स्कन्दजी ने
धारण कर छात्रों का दुग्ध पान किया तब से इनका नाम स्कन्द
हुआ ६ माताओं का भाग एक बालक में बराबर हो उसको
में पाणमातुर कहते हैं । जिसका विग्रह वाक्य पण्णां मानूणां मन्त्र
पाणमातुरः ऐसा होता है । और इम पुस्तक में स्कन्दजी
कहा है कि " तासां मन्त्रं गयाधितं मुखैः पड्भिर्द्विजोत्तम "
उनका दुग्ध मैंने अपने ६ मुखों से पीया है । एवं आगे कहा
" पाणमातुर इति ख्यातः " अर्थात् तब से मेरा नाम पाणमातुर

प्रत्यब्दं कार्ति के मासिस्नानवेलाभवाप्यताः ॥ ५१ ॥
अवलम्ब्यावतिष्ठन्ति पुनः स्नानोत्सुका इव ॥

ताः कृत्तिका आकाशस्थापि कार्तिकेमासि स्नानवेलाभवाप्य
पुनःस्नानोत्सुका इव प्रत्यब्दं प्रतिवर्षं अवलम्ब्याकाशादवतरन्त्य-
इव पश्चिमाशायां क्षितिजामध्वेतिष्ठन्ति एतदुक्तंभवति वस्तुतस्तु
स्नान वेला अरुणोदयकालः तस्मिन्समये प्रायः कार्तिकान्ते
कृत्तिकाताराः पश्चिमक्षितिजेदृश्यन्ते तत्र कारणम् सूर्यो
यस्मिन्नूचे भवति तदूचमेव सूर्योदयवेलायाम्पूर्वस्मिन्क्षितिजं
दृश्यते । इति ज्योतिष शास्त्रे स्पष्टम् एवं तस्मादक्षाक्षतुर्दशं नक्षत्रम्
तस्मिन्नेवकाले पश्चिमक्षितिजेलम् दृश्यते कार्तिके मासे पूर्णिमासप्त-
काले यदासूर्यः क्रान्तिवृत्ते तुलान्ते पृथ्विकादौबोदेति तदा
विशाखान्ते वा अनुराधादौ सूर्यो भवति । विशाखानुराधयोः

नोट—वे कृत्तिकाये आभरा से स्नान के लिये कार्तिक मास में ही उतरती हुई
दाँल पड़ती है क्यों ? इसका उत्तर ज्योतिष शास्त्र से स्पष्ट होता है । क्योंकि ज्योतिष के
सिद्धान्त ग्रन्थों में भूगोल स्वर्गोल प्रयोगोल के पारदर्शी विद्वान् लिखते हैं कि जिस
समय सूर्य जिस नक्षत्र में होकर पूर्व की दिशा में उदित होता है उसी समय सूर्य नक्षत्र
का चाँदइकां नक्षत्र पश्चिम दिशा में पृथ्वी से लगाइया दाँल पड़ता है यह
सिद्धान्त है इसमें न्यूनधिक कभी नहीं हो सकता और एशियाक महां के साथ तदा
पृथ्वी के चारों तरफ परिभ्रमण किया करता है सायन मेघ के प्रातःकाल में अश्विनी
पूर्व दिशा में और चित्रा पश्चिम में रहती है और तुलादि में चित्रा पूर्व में और
अश्विनी पश्चिम क्षितिज में दाँलपड़ती है चित्रा के सूर्य कार्तिकादि में होते हैं और कार्तिको
पूर्णिमा के लगभग विशाखया अनुराधा में सूर्य उदित होता है तो पश्चिम दिशा में
प्रातःकाल के समय पृथ्वी में सड़ी हुई मरपी और कृत्तिका दाँलनी है मानों यह
कृत्तिका भी कार्तिक की पूर्णिमा के स्नान वाले ही आभरा से उतर रही है और प्रत्यक्ष
पंचाङ्गों में देखिये तो कार्तिकी पूर्णिमा में कृत्तिका नक्षत्र का योग हुआ ही रहता है और
इसी योगवशा महीना का नाम कार्तिक है क्योंकि कृत्तिका ही में इसकी सम्पत्ति होती है ।
चन्द्र चारवरा कृत्तिका नक्षत्र कार्तिकी पूर्णिमा को मानी है इसलिये मूल में
“ कार्तिके कृत्तिका द्याये ” ऐसा पद दिया है यही नहीं बल्के सभी महीनों*

पूर्णांशदोदेति तदा पञ्चिनाशायां चित्रिनामने कदाचिदप्यः
 कदाचिदुद्देश्यः कृत्तिकायापिद्वयन्ते अनध्याः कृत्तिकाः
 पुनः स्नानोत्पुकाश्वासम्भायनिष्ठन्ते इति कथनं ज्यातिप मिदान्
 गत्यापि युक्तिगुरुनेयेति । पुनः प्रायः कार्तिक पूर्णिमायां कृत्तिका
 नक्षत्रमपि चन्द्रचारवेशन भवतीति पञ्चाङ्गे स्पष्टं तेनापिस्कन्दो-
 त्थिष्यते ।

मनिवर्ष जब कार्तिक मास में स्नान का समय आता है तो वे
 कृत्तिकाएं आकाश में उतरती हुई दीप्त पड़ती हैं मानो फिर भी
 स्नान करने के लिए उत्सुक हुई हैं ।

तस्मात्पान्तक सधानकारिणि स्नान्ति चारिणि ॥ ५२ ॥
 कार्तिके कृत्तिकाह्राथे तेषान्ति विमलांगनिम् ॥
 ये पुनः स्नान्ति तन्मासि कपिलायनने मुने ॥ ५३ ॥
 तेषां किम्बर्ण्यतेभाग्यं महाभागवतां भुवि ॥

* की पूर्णिमाओं में एक एक सप्तम नक्षत्र का याग होता है जिससे प्रचलित महीनों के नाम
 हैं जिसका प्रसंग वरा यहां लिखना है ज्योतिषशास्त्र में मास गणना सौर सावन नाचन
 और चान्न के भेद से चार प्रकार की है और जिस गणना से जो कार्य करने को कहा
 गया है उसमें वही कार्य किया जाता है परन्तु चन्द्रमान दो प्रकार से प्रसिद्ध है हम
 सौर शास्त्र में दोनोंही के जगह २ विषय उपस्थित देखते हैं उनमें एक को अमान्त
 कहते हैं जिसका उपयोग गणित में प्रायः हुआ करता है दूसरा पूर्णान्त है जिसका उपयोग
 बहुधा व्यवहार में होता है और पूर्णिमा को जो नक्षत्र आता है उससे ज्योतिषियों
 ने महीनों के नाम बनाये हैं जैसे चित्रा युक्त पूर्णिमा होने से चित्र (चित्र) विराहा
 युक्त पूर्णिमा होने से वैराहा अथवा युक्त पूर्णिमा होने से ज्येष्ठ एवं उत्तराषाढ़ से
 आषाढ़ अथवा से आषण उत्तर भाद्रपदा से भाद्रपद अश्विनी से आश्विन मारवाड से
 आसोच कृत्तिका युक्त पूर्णिमा को कार्तिकी कहते हैं उससे कार्तिक मास होता है, एवं
 मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुण इत्यादि । संस्कृत में चित्र या युक्ता पूर्णिमासी चैत्री
 तस्यां भवोद्यमासः चैत्रः विराहाया युक्ता पूर्णिमासी वैराहासी तत्र भवोद्यमासो वैराहः
 इत्यादि विशेषः के नाम नाम भिन्न होते हैं ।

यतः पुनर्जननमरणादि संसारबन्धनमुक्ताः कृत्तिकाताराः
कपिलेये कार्तिकस्नानवर्भवेनैवजातास्तस्मात्पातकसंघात कारिणि
वारिणि कार्तिकेमासे कृत्तिकाछाये अर्धस्पूर्णिमायां ये स्नान्ति ते
विमलांगतिं यान्ति ॥ यतः पूर्णिमायां कृत्तिका योगो भवत्येवेति
॥ ५२, ५३ ॥

कार्तिक मास में कपिलतीर्थ के स्नान का ही यह विभव है कि
वे मुनि कन्याएं पुनर्जन्म-मरणादि सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर
तारों के रूप में आकाश की शोभा बढ़ा रही हैं इसलिए महापातकों
का नाश करनेवाला जो कपिलसरोवर है इस में जो कार्तिकी पूर्णिमा
के दिन स्नान करते हैं उन की विमल गति होती है और जो कार्तिक
मासभर स्नान करते हैं उन महाभागवतों के भाग्य का वर्णन कौन
कर सकता है ॥ ५२, ५३ ॥

इति ते सर्वमाख्यातं घाघ्रीणां मे विचेष्टितम् ॥ ५४ ॥
कपिलालयस्नानपुण्याज्जातं लोकैक सात्त्विकम् ॥

(स्पष्टम्)

हे घगस्त्य ! इस प्रकार कपिलालय का स्नान के पुण्य से संसार
में सात्त्विक जो मेरी घाघ्रियों के कृत्य हैं उनको तुम से मैंने कहा है ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्वादे कपिलायतनमाहात्म्ये
तीर्थपर्यटनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

पंचमाध्यायविवृतिः ।



(गून उगान)

इत्युक्त्वा पुनरप्याह महासेनो महाद्भुतम् ॥
कपिलालय माहात्म्यं सेतिहासं महाभुने ॥ १ ॥

आदिमन्यदपमाणे पंचमाध्याये स्कन्दः पुनरगस्त्यं कपिलालय
माहात्म्यं सेतिहासं वर्णयति इत्युक्त्वेति हे महाभुने शौनक ! इत्यु-
क्त्वार्थात् स्वधान्तर्यामि तारारुपाणां कृत्तिकानां चरितमुक्त्वा महासेनः
स्कन्दः महाद्भुतं महाश्चर्यकरं सेतिहासं कपिलालय माहात्म्यं
पुनरप्याह ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं कि हे मुनि शौनक ! महासेन स्कन्द देव ने
चतुर्थाध्याय में इस प्रकार अपनी धात्री कृत्तिकाओं का चरित्र वर्णन
करने के अनन्तर महाश्चर्यकर इतिहास के साथ कपिलालय माहात्म्य
को फिर भी इस पांचवें अध्याय में कहा था सो सुनो ॥ १ ॥

महापात संघात विघातक पटीयसीम् ॥
कपिलायतनीगाथां मन्मैत्रा चरुणे शृणु ॥ २ ॥

हे मैत्रावरुणे ! अगस्त्य ! महांशसौपातकाश्च महापातकाः
महापातकानां संघातः समूहो महापातकसंघातः तस्य विघातके
विध्वंसने पटीयसी समर्थतराताम् महापातकसंघातविघातक
पटीयसीम् महामहा पातकजाल विनाशदत्तां कपिलायतनी गाथां
कथां मत् कोर्थः मत्तः शृणु ॥ २ ॥

हे मैत्रावरुणि ! बड़े २ पातकों के समूहों को विनाश करने में
समर्थ जो कपिलायतन की कथा है उसको सुनो ॥ २ ॥

फदाचित्तान्तिके मामिकान्त प्रान्त दिनेषुच ॥

समाजोऽभून्महान्नघ देशदेशनिवासिनाम् ॥ ३ ॥

कदाचित् पूर्वस्मिन्ममये-एकदा कार्तिके अर्धात्कार्तिकेमासे
मागिकप्रान्तदिनेषु चात्र पादपूर्वकाऽव्ययोविमानि । मासे भवानि
मामिकानि प्रान्ते यानि दिनानि-शुक्रकादशीमारभ्य पूर्णिमा
पर्यन्तानि तानि मामिकप्रान्तदिनानि तेषु देशदेशनिवासिनां
मनुष्याणां समाजोऽभूत् ॥ ३ ॥

एक ममय में कार्तिक मास के अन्त के पांच दिनों में देश
देश के निवासी मनुष्यों का एक समाज एकत्र हुआ ॥ ३ ॥

कस्मिँधिद्विषमेपुण्ये सत्समाजस्ममुद्यतः ॥

तीर्थप्रदक्षिणीकृतुं यात्राफलसमीक्षया ॥ ४ ॥

कस्मिँधिपुण्ये दिने यात्रा फल समीक्षया यात्रा फल प्राप्ति
कामनया तीर्थ प्रदक्षिणीकृतुं मत्समाजः मतां माधुनां समाजस्य-
सुधतः तीर्थप्रदक्षिणायामुद्यतोऽभूत् ॥ ४ ॥

किसी पुण्यकाल के दिन में यात्रा के पूर्ण फल प्राप्ति की कामना
से मन्त्रों का समाज तीर्थ की प्रदक्षिणा करने के लिये उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥

मये प्रदक्षिणां यन्त्रानिस्तथ च कुटुम्बिनः ॥

भगवतामगृह्णन् नानादानादवाशयाः ॥ ५ ॥

समिन्नुद्यते समाजे भगवदागृह्णन्तः यत्र भगवत्पदो-
त्पत्तस्तथाः नानादानादवाशयाः नानादानानि मन्त्र
कारणः समाजो प्रायः ज्ञातव्यः यतोऽनिलातोरेवन्ते नानादाना-
दवाशयाः यनेकदानप्रदमात्रकलमनीयः विष्टरः कुटुम्बिनश्च
सर्वे इति सं पद्यः ॥ ५ ॥

उसी समय अनेक दानों में तुम भिक्षुक लोग और कुट्टनी
(गृहस्थ) लोगों ने भी भगवान् के नाम को जपने हुये प्रदर्शित की । ॥ ५ ॥

तत्र कश्चिद्विचित्रभृग् स्वशुना सहितो यशः ॥
सोऽपि प्रदक्षिणं पुण्यचक्रे सर्वजनः सह ॥ ६ ॥

तब ममांज स्वशुनासहितः अवशः अहनिशं स्वकुटुम्ब
परिपोषणाय म्यादरपूरणाय च मिद्यार्थं सुव्यचिनः कश्चिद्विचित्रभृत्
गतवानिति भावः सोऽपि सर्वजनः सह प्रदक्षिणं चक्रे ॥ ६ ॥

उस समाज में अपने कुत्ते को साथ लेकर कोई लुब्धचित्त भिक्षुक
घुस गया और उसने भी सब लोगों के साथ उस पुण्य प्रदर्शित की
किया ॥ ६ ॥

तस्यानुयायी तच्छ्रापिचक्रे तीर्थं प्रदक्षिणं ॥
नानाभावयुतो लोको दृष्ट्वा तं विस्मितोऽभवत् ॥ ७ ॥

तस्य भिक्षोरनुयायी सहानुगन्ता तत्तत्स्वरथा इति विग्रहान्
तच्छ्रापि तीर्थप्रदक्षिणं चक्रे कृतवान् । नानाभावयुतो लोक
स्तं श्वानं प्रदक्षिणां कुर्वन्तं दृष्ट्वा विस्मितोऽभवत् ॥ ७ ॥

उस भिक्षुक के पीछे पीछे चलनेवाले कुत्ते ने भी तीर्थ की
प्रदर्शित की, यह देख अनेक भाव से युत समाज के सभी लोग
आश्चर्यान्वित हो गये ॥ ७ ॥

केचित्तं भर्त्सयन्ति स्म धिक्कुर्वन्ति स्म केचन ॥
तथापि भिक्षोः पारयं स न विमुञ्चति वै मनाक् ॥ ८ ॥

केचित्तं श्वानं भर्त्सयन्ति स्म भर्त्सनां दण्डप्रहाररूपताड़नां
कुर्वन्ति स्म परवर्धे भर्त्सना लघुदण्डप्रहाररूपवभवति । केचन तं धिक्

कुर्वन्तिस्म अर्थात् दुत्कारशब्देन स्वसार्माप्यात्पृथक् कुर्वन्तिस्म
लोके धिक्शब्दस्य पश्ये दुरदुर शब्दः दूर करणे उपयुक्तोभवति ।
सथापि स रवा कुक्कुरः भिक्षोः पार्श्वं सामिप्यं मनाक् स्तोकमपि न
विभुञ्चतिस्म लोकेः दुरदुरादिशब्देन लगुडादिप्रहारेणच पीडयमा-
नोपि स्वस्वामिनः भिक्षोरनुगच्छन्नेवासीत् ॥ ८ ॥

कोई उस कुत्ते को भर्त्सना करते थे लकड़ियों से मारते थे कोई
दुरदुराते थे तोभी वह अपने मालिक (उस भिक्षुक) के पास से नहीं
हटता था ॥ ८ ॥

केचित्तत्र घदन्तिस्मजना आचार तत्पराः ॥

रवायं स्पृशति सर्वाद्यः प्रगृह्योद्वास्यतां वह्निः ॥ ९ ॥

केचिज्जनाः आचारतत्पराः सदा शौचाचारयुक्तास्तत्र समाजे
घदन्तिस्म यद्यं रवा नः सर्वान् स्पृशति एनं हठात् प्रगृह्य
वह्निर्द्वास्यतां निष्कारयताम् ॥ ९ ॥

उस समाज में जो बड़े आचार-विचार की विडम्बना करनेवाले
मनुष्य थे वे कहते थे कि यह कुत्ता हमलोगों को स्पर्श करेगा इसको
पकड़कर शहर निकाल दो ॥ ९ ॥

अन्ये पुनः शान्ति पराः नैवं कार्यं कदाचन ॥

एवं तान् प्रवदन्तिस्म सांत्वयानाः स्मिन्नाननाः ॥ १० ॥

पुनरन्ये शान्ति पराः शान्ति प्रियाः सततमिष-
दास्पृशता जनाः कदाचन एवं कुक्कुरस्य
समाजोद्गीर्णं मन्तः
प्रवदन्ति

फिर उस समाज के और लोग जो हमेशः शान्ति को प्यार करने वाले और सब से थोड़ी हंसी के साथ प्रिय वचन बोलने वाले, राग द्वेष रहित महात्मा थे । जो प्राणीमात्र को एक सा देखते थे वे उन लोगों (जो कुत्ते को पकड़कर समाज से बाहर करने को उद्यत थे) से, उस भिक्षुक (जिसका वह कुत्ता था) के साथ कहीं विवाद न बढ़ जाय इस विचार से समझाते हुये कहने लगे कि ऐसा काम कभी नहीं करना चाहिये अर्थात् उस कुत्ते को बाहर कभी नहीं निहालना चाहिये ॥ १० ॥

तान्प्रत्यृचुः पुनस्तेतु स्वाचाराग्रहकारिणः ॥

भयतां किंनुवसाव्यं यूयं ब्रह्मविद्भजितौ ॥ ११ ॥

शुनिचैवश्वपाकेच परं ब्रह्मैव परमथ ॥

एवं चचनयमोक्ष्या विविधुस्तांस्तमोयुताः ॥ १२ ॥

सर्वत्रैव समाजे सर्वे विधा मनुष्या एकधीभवन्ति तथैवप्रापिच ।
प्रदक्षिणां कुर्याति शुनि, प्रदक्षिणं कर्ततांजनानां मध्यतो दलद्वयं
गुल्फमम् तत्र राजसत्ताममानामेकंदलम् सात्विकानां च द्वितीयम्
प्रदक्षिणकर्मणिस्तद्वानं दृष्ट्वा उक्तदलद्वये विवादस्मद्गुणस्थितः
प्रदक्षिणपथे शुनोपमनं राजसत्तागसानां यावत्सदाचारप्रदर्शनां
मतेऽनगर्तगाभीदतस्ते तं यदिःकर्तुमृचयाः सात्विकान् भो । मैत्रं
कार्यमिति कथिन्या तान् मान्त्वयन्तिस्म । एवं परस्पां विवादे-
शमशां दर्दमाने । तामयानां चाक्षम् तान्प्रत्युत्तुरित्याधार
भ्याऽभवन् ॥ स्वाचाराग्रदक्षिणः स्वाचाराभिमानिनस्तमोऽपु-
तास्तमस्तमासाजनानां तान् मन्वितास्तनुनः प्रत्युत्तुः पूरं प्राप्तिरु-
त्पन्नं भुत्वा, पुनस्तुति । मृतं त्विवा द्रव्यविदः मरणां किंनुभवं
यथान्मनि तथैव शुनिश्रमतेर्न परं प्रत्येकं परतय एवं जन
दमोक्त्या वाग्मानेन मान् विविधुर्मेदयामासु ॥ ११, १२ ॥

जहाँ कहीं गया तो मनुष्य एकत्र हो जाये उसको समाज या मेलना कहते हैं और ऐसे समाज में सब प्रकार के मनुष्यों का रहना स्वाभाविक है और उनमें अनेक प्रकार का प्रेम भी उत्पन्न हो स्वाभाविक है, यहाँ पर जो समाज एकत्र था उसमें भी मनोगुण राजोगुण और नमोगुण सभी प्रकृति के मनुष्य थे और प्रेम उस भिक्षुक के कुल का था पढ़ा । भिक्षुक के कुल को समाज के साथ प्रदत्तियाँ कर्त देय समाज में दो दल होगये । एक दल तो राजोगुण तमोगुणवालों का बनगया, दूसरा मनोगुणियों का, और तमोगुणी जो बाहर से आये महाभारत का मार्ग आटम्वर फैलाये थे वे कहते थे कि कुल को बाहर निकाल देना चाहिये हम लोगों को छुड़कर अपवित्र करेगा । और सात्विक कहते थे कि ऐसा नहीं करना चाहिये । यही से विवाद आरंभ हुआ । अब आगे बाह्यविवाद उत्तरप्रश्नुषर जाता चला गो कहने हैं । सात्विकों के मन करने पर तमः प्रकृतिवाले बोले, कि आपका क्या कहना है ? आप लोग तो हम पूर्वी में साक्षात् प्रसन्नानी हैं जैसे अपने में प्रेम देगते दे देते हैं । एक कुल और एक पाण्डवान में भी परमेश्वर को देम है । हम तरह अपने व्यवचलन के कारणों से उनको देखने लगे ॥ ११, १ ॥

पुनः प्रौढिसमाश्रित्य तान् प्रत्याहुस्मराजसाः ॥ १४ ॥
विमानमस्य मोक्षाय गंगनादागमिष्यति ॥

पुनः राजसाः प्रौढिसमाश्रित्य रोपेणातिरौद्ररूपमाश्रित्य
तान् सात्विकानूचुः यदस्य शुनोमोक्षाप गंगनाद्विमानमाग
मिष्यति ॥ १४ ॥

फिर राजस प्रकृतिवाले बड़े उत्तेजित होकर सात्विकों से बोले
कि आपलोग इसका इतना पक्ष कर रहे हैं मानो इसके मोक्ष के वास्ते
आकाश से विमान आवेगा ॥ १४ ॥

स्मित्वा ते प्रवदन्तिस्म पुनस्तान्मत्सरावृतान् ॥ १५ ॥
विमानं भवतां पूर्वमागमिष्यति निश्चिनम् ॥
येषामाचारनैपुण्यमेतादृक् संप्रवर्तते ॥ १६ ॥

ते सात्विकाः पुनस्तान् मत्सरान्वितान् प्रौढिमुपागतान् जनान्
स्मित्वा प्रवदन्तिस्म यत्पूर्वभवतामेव विमानं निश्चितम् आग
मिष्यति । येषां भवतामाचारनैपुण्यमेतादृक् संप्रवर्तते ॥ १६ ॥

वे सात्विक लोग उन मत्सरियों से थोड़ा हंसते हुवे फिर बोले
कि इस कुत्ते के वास्ते विमान क्यों आवेगा ? यदि विमान आवेगा तो
पहले आप लोगों के वास्ते ही, क्योंकि आप लोगों का आचार
विचार इस प्रकार बड़ा-बड़ा है ॥ १६ ॥

एवं तत्र जना द्वाघ्नन्प्रवदन्ते परस्परम् ॥
स्वस्वभावाधुरोधेन रजःसत्त्वगमोयुताः ॥ १७ ॥

हे मत्स्रन् ! एवं तत्र रजःसत्त्वगमोयुता जनाः स्वस्व भावाधु-
रोधेन परस्परं प्रवदन्ते ॥ १७ ॥

हे ब्रह्मन् भगवत्यजी ! उस समाज के राजस तामस और सात्विक प्रकृति वाले मनुष्य अपनी २ प्रकृति के अनुकूल इस प्रकार परस्पर वादविवाद कर रहे थे ॥ १७ ॥

तथा विवदमानेषु नानाजल्पेषु वृष्टेषु ॥

स्वस्वामी सस्मितास्यः सन् प्रदक्षिणमवर्त्तत ॥ १८ ॥

तथा पूर्वोक्तवन् नानाजल्पेषु जल्पं निरर्थकं वचनम् तेषु अनेक निरर्थकालापेषु विवदमानेषु परस्परं विवादयन्तु नृप मनुष्येषु यं इति निरर्थकमप्ययमिति केवलं पादपूरणे बोध्यम् । स स्वस्वामी भिक्षुकः स्मितास्यः सन् परस्परं निष्प्रयोजनमेव विवदन्तं दलद्वयं परवन् दलद्वयस्यमनुजान् दमन् इतिभावः प्रदक्षिणमवर्त्तत प्रदक्षिणासमाप्तिमकरोत् ॥ १८ ॥

इस तरह दोनों पक्षवाले मनुष्यों ने परस्पर निष्प्रयोजन विवाद हो रहा था तबतक उस कुंभ के स्वामी भिक्षुक ने समझना पूर्वक अपनी प्रदक्षिणा को समाप्त कर लिया ॥ १८ ॥

सर्वे सामाजिकाश्चक्रुस्तीर्थेनत्र प्रदक्षिणम् ॥

अथापि स्वस्वामिना स्तद्धं चक्रे चक्रः प्रदक्षिणम् ॥ १९ ॥

एव तीर्थे सर्वे सामाजिकाः समाजस्था मनुष्याः प्रदक्षिणं चक्रुः अथापि स्वस्वामिना भिक्षुरेव सह चक्र इति विद्या विज्ञेयं प्रदक्षिणं चक्रे ॥ १९ ॥

सभी समाज के मनुष्यों ने उस तीर्थ की प्रदक्षिणा की और उस कुंभ ने भी अपने स्वामी के साथ प्रदक्षिणा चकरी ॥ १९ ॥

परस्परानामन्यनारभ्य प्रदक्षिणमवर्त्तन ॥

पुनस्तत्स्थानमागता सर्वे विधांनिमागताः ॥ २० ॥

यत्न यस्यान्धानान् गन्धगारम्योत्थानं कृत्वा प्रदक्षिण
कुर्वन् पुनस्तन्ध्यानमागाद्य गन्धगन्धय सर्वं विश्रांतिमागताः
विश्रामगातुमिति ॥ २० ॥

उन मनुष्यों ने जिन स्थान में प्रदक्षिण करना आरंभ किया था
पिता उनी स्थान पर आकर वहाँ ने विश्राम किया ॥ २० ॥

शान्त्य विधिवद्वारि क्षणमात्रं स्थिताः क्षिप्तौ ॥
श्यापि तत्र समागत्य किञ्चित्प्राप्त्या जलं शुचि ॥ २१ ॥
समासाद्य सरस्तीरं निजेनेन्द्रेन्यमीलयत् ॥

विश्रांतिस्थाने समागताः मामाजिकाः वासिजले विधिवद्विधि-
पूर्वकमाचम्य क्षिप्तौ क्षणमात्रं स्थिताः क्षणमात्रं तत्रैवावसन् तत्र
श्यापि तत्र समागत्य शुचि पवित्रं जलं किञ्चित्प्राप्त्या पुनः सरस्तीरं
समासाद्योपाविरथ निजेनेन्द्रे न्यमीलयत् ॥

विश्राम स्थान पर आये हुए सभी मनुष्य जल में विधिवत्
आचमन करके सरोवर के तट की भूमि पर कुछ काल तक ठहर गये
तबतक वह कुत्ता भी वहाँ आकर उस सरोवर का पवित्र जल पीकर
पुनः तीर पर आ बैठा और अपने नेत्रों को बन्द कर लिया ॥

पश्यतां सर्वलोकानां विस्मयाविष्टचेतसाम् ॥ २२ ॥
अकस्मादेव विप्रेन्द्र ! सद्यः प्राणानवाप्तुज्जत् ॥

हे विप्रेन्द्र ! विस्मयाविष्टचेतसाम् सर्वलोकानां पश्यताम्
अकस्मादेव सद्यः तत्कालं प्राणान् अवाप्तुज्जत् ॥

हे विप्रेन्द्र ! आश्चर्य के साथ सब लोगों के देखते-२ उस कुत्ते
ने एकाएक अपने प्राणों को परित्याग कर दिया ॥

ततः क्षणात् समायान्तं विमानं भास्वरं दिवः ॥ २३ ॥
तत्रास्थाय स्थिरं दिव्यं तेजोरूपं समाश्रितः ॥
ययौ परयत्सु सर्वेषु परंधामदिवौकसाम् ॥ २४ ॥

ततस्तदनन्तरं क्षणान्मुहूर्तेनैव भास्वरं पुतिमन्तं विमानं दिवः
स्वर्गात् समायान्तं आगतवन्तं दृष्ट्वा तत्र विमाने स्थिरमास्थाय
स्थित्वा दिव्यं भास्वरं तेजोरूपमाश्रितः तेजोरूपदधार ॥ सर्वेषु
जनेषु परयत्सु दिवौकसाम् देवानां परंधाम स्थानं देवलोकं
यया गतवान् ॥ २४ ॥

इसके बाद क्षणभर में सुन्दर चमकता हुआ विमान आकाश से
आया उसको देख उस पर सुन्दर तेजोमय रूप धारण कर दृढ़ता से
बैठ गया ॥ और सब लोगों के देखते २ देवलोक को चला
गया ॥ २४ ॥

उन्मुखाः केचिदासन्वै केचिदामन्नवाङ्मुखाः ॥
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं तत्र तीर्थं द्विजोत्तम ॥ २५ ॥

हे द्विजोत्तम ! केचित् ये श्वपक्षवादिनः सात्विकास्ते तत्र
तीर्थं तन्महदार्थं दृष्ट्वा उन्मुखाः विमानेन्मुखाः सन्तः विमानं
परयन्नासन् । तथा येकेचित् श्वबहिर्निष्काशनतत्पराः तमोयुतास्ते
लज्जया अवाङ्मुखा अवनिम्पश्यन् आसन् ॥ २५ ॥

जो लोग समदर्शी और कुत्ते के पक्ष में विश्वास करनेवाले सात्विक
मनुष्य थे वे तो उर्ध्वमुख होकर इस एक अद्भुत घटना को देख रहे थे
और जो राजस तामस प्रकृतिवाले कुत्ते को समाज से बाहर निकाल
देने में तत्पर हुए थे उन्होंने लज्जावश नीचे मुख कर लिये ॥ २५ ॥

इति एवं पृष्टः पार्वतीनन्दनोऽनुनिश्चन्दः इष्टः प्रदोषन
पुरः अग्रंस्थितं पुगागर्हि अगम्यंशनिपुगातुं पूर्वजातं पुणं
पवित्रं पुनान्नं पुनः प्राद उरान ॥ ३ ॥

गुरुजी आने भोताई में बोले कि इस प्रकार जब समान्यकीने
रुन्द भगवान् मे पध किया तो पार्वतीनन्दन भगवान् रुन्दजी ने
पुगभिन पुगागर्हि अगम्य मे प्रगय होकर पवित्र और प्रचीन
इतिहास को सुनाया ॥ ३ ॥

(रुन्द उवाच)

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुराश्रुतं कथानकम् ॥

एकस्मिन्द्विसेष्टुतं देशे गुर्जरसंज्ञके ॥ ४ ॥

हे विप्र ! पुराश्रुतं पूर्वजातं कथानकं प्रवक्ष्यामि कथयामि
श्रणु ॥ यदेकस्मिन् समये गुर्जरसंज्ञके देशे श्रुतं अर्थात् पठितम्
॥ ४ ॥

हे विप्र ! एक पूर्वकालिक वृत्तान्त कहता हूं, सुनो (जो गुर्जर
देश में एक समय में हुआ था) ॥ ४ ॥

अस्ति गौर्जरिकोदेशोधनिनामाश्रयः परः ॥

यत्रत्याहिप्रजाः सर्वाः सदाचारपरायणाः ॥ ५ ॥

धनिमाश्रयोनिवासस्थानम् यत्र स गौर्जरिकः गुर्जरनामको
देशोऽस्ति यत्रत्या यत्रमवाः सर्वाः प्रजाः सदाचारपरायणाः
सन्तीति अत्र वर्तमान कालिंकी क्रिया भूतकाल बोध्या यथा कुमारसं
भवे । अस्त्युत्तरसां दिशि देवताभिर्हिमालयोनाम नगाधिरात्र
इति ॥ ५ ॥

गुर्जर देश (गुजरात) में धनियों के निवास योग्य एक परम उत्कृष्ट
स्थान था जहां की प्रजा सदाचार सदैम में सदा परायण रहती थी ॥ ५ ॥

पुरंजयति तद्देशे नाना हर्म्यसमाकुले ॥
सर्व देशशिरोरत्नभूतं सदलकोपमम् ॥

तद्देशे अर्थात् गुर्जरे देशे नाना हर्म्यसमाकुलम् अनेक
धनि भवनेन सुशोभितम् “ हर्म्यं तु धनिनां वासः इत्यमरोक्त्या ”
सर्वदेशशिरोरत्नभूतं लक्ष्मीनिवासकारणादिति अलकोपमं अलका-
पुरी कुबेरनगरी तद्वदृशं सत् पुरं ग्रामं जयति सर्वोत्कर्षेण विराजते ॥ ६ ॥

उस गुर्जर देश में अनेकानेक उत्तम उत्तम गृहों से सुशोभित
सब देशों का मुकुट अलकापुरी सहर एक ग्राम था ॥ ६ ॥

यस्य हर्म्यस्थलेष्वद्वा गौरांग्यः संचरन्ति हि ॥
शारदाभ्रप्रविष्टानां क्षिपंत्योविद्युतां युतिम् ॥ ७ ॥

यस्य पुरस्य हर्म्यस्थलेषु हर्म्यप्रदेशेषु अद्वा साक्षात् शार-
दाभ्रप्रविष्टानां विद्युतां शारदीयमेघसंघिकर्षोद्गतानां साँदामिनीनां
द्युतिं द्यौर्वि क्षिपन्त्यः सर्वतः प्रसारयन्त्यो गौराङ्ग्यस्सुन्दर्यः
सञ्चरन्ति इततस्तोभ्रमन्तिस्म हीति पादपुरकः । अस्यायं भावः
यथा शुभ्रवर्णेशारदीयाभ्रे इत उतः स्वकान्तिमुद्गिरन्त्याश्चलायाः
परिभ्रम्यं सम्पद्यते तथैवास्पग्रामस्य शारदीयाभ्रसंनिभ रवेतहर्म्य-
प्रदेशेषु विद्युद्विकाशसदृशीनां कामिनीनामपि गमनमासीत् ॥ ७ ॥

जिस ग्राम के धनिक गृहों में सुंदर २ स्त्रियों शरत्काल के मेघ
में प्रविष्ट बिजली की तरह अपनी प्रकाशमयी सुन्दरता से चमकती
हुई फिरती थी ॥ ७ ॥

:नरादेवप्रभा यत्र नाय्यैदेवीसमानभाः ॥
गृहा अभ्रंलिहा यत्र स्वारामा नन्दनप्रभाः ॥ ८ ॥

अंशेन तेन स्वयसोर्वापीकूपसरांसिच ॥

दिव्यान्देवालयान्वापि कारयामास वैरयजः ॥ ११ ॥

स्वयसोः स्वर्कायधनस्य तेन अंशेन धनपट्टांशेन वैरयजः
वापीकूपसरांसि वापीकूपतडागादीन् दिव्यान् मनोहरान्देवा-
लयान् देवमन्दिराणिच कारयामास ॥ ११ ॥

उस श्रीकृष्णार्पित धन के पट्टांश से वह वैश्य वापी कूप तडाग
और सुन्दर सुन्दर देवालयों को बनवाता था ॥ ११ ॥

नाना विधानि दानानि चक्रे शास्त्रोक्तमार्गतः ॥

तथान्नसत्रं विदधे क्षुधितेभ्योदिवानिशम् ॥ १२ ॥

शास्त्रोक्तमार्गतोनानाविधानि दानानि चक्रे तथा क्षुधितेभ्यो
दिवानिशम् अन्नसत्रं अन्नमयंमज्ञं विदधे ॥ १२ ॥

वह वैश्य शास्त्रोक्त विधान से अनेक प्रकार के दान करता था
और क्षुधितों के लिये दिनरात अन्न दान करता रहता था ॥ १२ ॥

एवं प्रवर्तमानस्य वणिजस्तस्य सत्तम ॥

पुत्राः पञ्चाऽभवन्मन्याः बहुदालिण्यसंयुताः ॥ १३ ॥

हे सत्तम ! एवं प्रवर्तमानस्य सुकृतरतस्य तस्य वणिजः ।
मन्याः मनोहराः अतिमुचतुराः पञ्च पुत्रा अभवन् ॥ १३ ॥

इस तरह सुकर्म में तत्पर रहनेवाले उस वैश्य के उत्तम २
गुणों से संयुक्त सुन्दर २ पांच पुत्र हुए ॥ १३ ॥

एतेषां ज्येष्ठ आसीद्यः सजन्मान्धस्त्वकर्मणा ॥

बुद्धिमान् सुधियेकश्च सर्वेभ्योऽप्यु सुन्दरः ॥ १४ ॥

(स्पष्टम्)

भगवान् की कृपा और उसके पुण्य कर्म के बल से उस स्त्री के उस अन्वे से भी बहुत पुण्यवान् पुत्र उत्पन्न हुए ॥

एवं प्रवर्ततस्तस्य सत्पुत्रस्यच सत्पितुः ॥ १८ ॥

कालोमहान्घर्तीयाय बहुभोगभुजोभुवि ॥

एवं प्रवर्ततः गार्हस्थ्यधर्मं वर्तयतो बहुभोगभुजस्तस्य सत्पुत्रस्य सत्पितुश्च महान्कालोव्यर्तीयाय ॥

इस तरह गार्हस्थ्य धर्म का परिपालन करते हुए और अनेक उत्तम भोगों को भोगते हुए उन पिता पुत्रों को बहुत दिन बीत गये ॥

महामौल्येन यत्क्रीतं नाना देशसमुद्भवम् ॥ १९ ॥

धनं धान्यं फलं घञ्च भुङ्क्तेऽसावुरुजोत्तमः ॥

महामौल्येन महाधर्मेण नाना देशसमुद्भवम् नाना देश जातं धनं धान्यं फलं वञ्च यत्क्रीतम् तदसावुरुजोत्तमः भुङ्क्ते भुक्त्वानिति अत्र वैरयार्थे उरुजः शब्दोवैदिकः ब्राह्मणोऽस्य सुव्रमासीदित्युचायां स्पष्टम् ॥

महगे भाव में उस वैश्य ने जो अनेक देशों से धन, धान्य, फल और वस्त्रादि सरीदे थे उसका वह स्वयं भोग करता था ॥

कस्मिंश्चित्कालपर्याये मुद्राः काच प्रभावाः ॥ २० ॥

चण्डिजा केन ते विप्र तद्वैरयोपायनीकृताः ॥

हे विप्र ! कस्मिंश्चित्कालपर्याये कस्मिंश्चित्कालपर्याये काचप्रभाः काच सदृशप्रभावन्तो नवा मुद्राः केन चण्डिजा वैरयेन तद्वैरयोपायनीकृता अर्थात्तस्मै वैरयापोपहारे दन्ताः ॥

एतेषां पुत्राणां मध्ये यः ज्येष्ठः पुत्रः स स्वकर्मणा स्वकीय
 पूर्वाजन्मानिगतकर्मणा जन्मान्त्रोऽपि सर्वेषु अंगेषु सुन्दरः कर्मणा
 सुविधेकः सुज्ञानी बुद्धिमांसासीत् ॥ १४ ॥

उन पाँचों पुत्रों में जो ज्येष्ठ था वह अपने पूर्व जन्म के कर्मों के
 वश जन्मांध था परन्तु सब अंगों से सुन्दर और सद्बिचार सद्बुद्धि से
 युक्त था ॥ १४ ॥

पंचपुत्रेण घणिजा वसता तत्पुरोत्तमे ॥
 अन्धोऽपि निजपुत्रोऽसौ धनयोगेन भूरिणा ॥ १५ ॥
 विवाहितो वरां कन्यां स्व सम्बन्धिकुलोद्भवाम् ॥

स्वकीयेन पंचपुत्रेण सह तत्पुरोत्तमे वसता तेन वसिजा वरयेन
 भूरिणा धनयोगेन भूरिद्रव्यदानेन स्व सम्बन्धिकुलोद्भवा वरा
 श्रेष्ठां कन्यां अन्धोऽप्यसौ निजपुत्रो विवाहितः ॥

अपने पाँचों पुत्रों के साथ उस उत्तम नगर में रहनेवाले उस
 वैश्य ने बहुत धन देकर अपने सम्बन्धी की एक सुन्दरी कन्या से
 अन्धे पुत्र का भी विवाह कर दिया ।

सा सती तं स्वभर्तारं सिपेवे शुद्धमानसा ॥ १६ ॥
 वैचित्रवीर्यराजानं गांधारीव पतिव्रता ॥

(स्पष्टम्)

वह पतिव्रता कन्या अपने अन्धे पति की सेवा शुद्ध मन से करती
 थी जैसे राजा विचित्रवीर्य की पतिव्रता गान्धारी ने सेवा की थी ।

तस्यां तस्यापि सत्पुत्रा यन्मयुर्यमुद्दिष्टाः ॥ १७ ॥
 ईश्वरस्य प्रसादेन स्वेन पुण्येन कर्मणा ॥

(स्पष्टम्)

भगवान् की कृपा और उसके पुण्य कर्म के बल से उस स्त्री के उस अन्ये से भी बहुत गुणवान् पुत्र उत्पन्न हुए ॥

एवं प्रवर्ततस्तस्य सत्पुत्रस्यच सत्पितुः ॥ १८ ॥

कालोमहान्बपतीयाय बहुभोगभुजोभुवि ॥

एवं प्रवर्ततः गार्हस्थ्यधर्मं वर्तयतो बहुभोगभुजस्तस्य सत्पुत्रस्य सत्पितुश्च महान्कालोब्यतीयाय ॥

इस तरह गार्हस्थ्य धर्म का परिपालन करते हुए और अनेक उत्तम भोगों को भोगते हुए उन पिता पुत्रों को बहुत दिन बीत गये ॥

महामौल्येन यत्क्रीतं नाना देशसमुद्भवम् ॥ १९ ॥

धनं धान्यं फलं वस्त्रं मुक्तेऽसालुरुजोत्तमः ॥

महामौल्येन महार्घ्येण नाना देशसमुद्भवम् नाना देश जातं धनं धान्यं फलं वस्त्रं यत्क्रीतम् तदसालुरुजोत्तमः मुक्तेऽसालुरुजोत्तमः मुक्तेऽसालुरुजोत्तमः मुक्तेऽसालुरुजोत्तमः ॥

महंगे भाव में उस वैश्य ने जो अनेक देशों से धन, धान्य, फल और वस्त्रादि सारीये थे उसका वह स्वयं भोग करता था ॥

कस्मिंश्चित्कालपर्याये मुद्राः काच प्रभातयाः ॥ २० ॥

बलिजा केन ते विप्र तद्वैरयोपायनीकृताः ॥

हे विप्र ! कस्मिंश्चित्कालपर्याये कस्मिंस्तमये काचप्रभातः काच सदृशप्रभातयो नवा मुद्राः केन बलिजा वैश्येन तद्वैरयोपायनीकृता अभ्यास्तस्मै वैश्यापोपहारे दत्ताः ॥

एक समय की बात है कि किसी वैश्य ने कान के सहज चनने
हुए नये मूंग उस वैश्य को भेंट किये ॥

ये जाताः शर्करावत्यां पायनागां ध्रुवं भुवि ॥ २१ ॥
सोपितान्निकटीकृत्य स्वहस्तेनैव पस्पृशे ॥
तेषां स्पर्शनमात्रेण प्राङ्स्मृतिः समजायत ॥ २२ ॥

ये मुग्धाः पायनायां पवित्रायां शर्करावत्यां बालुकामय्याम्
वि ध्रुवं निधयेन जाताः उत्पन्नावभूवुः अन्योपिमवैश्यस्तान् मुद्गा-
न्निकटीकृत्य स्वासन्ननीत्वास्वहस्तेनैव पस्पृशे स्पर्शचकार तेषां-
मुद्गानां स्पर्शमात्रेण तस्य प्राक् (पूर्व जन्म समुद्भवा) स्मृतिः
स्मरणं समजायत स्वकीय पूर्व जन्मनो ज्ञानमभूत् ॥ २२ ॥

जो मूंग उपहार में आये थे वे पवित्र बालुकामयी मृमि से
उत्पन्न थे । उस अन्ये ने मूंगों की प्रशंसा सुनने के कारण उन मूंगों
को अपने समीप मंगाकर निज हाथों से स्पर्श किया और स्पर्श करते
ही उसको पूर्व जन्म का ज्ञान हो गया ॥ २२ ॥

आलिलिंगसतान् मुग्दान् जातायां स्वस्मृतौ मुहुः ॥
महाप्रेमसमाविष्टो धुन्वन्मूर्धानमात्मनः ॥ २३ ॥

एवं स्वस्मृतौ जातायां सोन्धोवणिक् महाप्रेमसमाविष्टो
मुहुरात्मनोमूर्धानं मस्तकं धुन्वन्कंपयन्तान्मुद्गानालिलिंग हृदा
स्पर्शचकार ॥ २३ ॥

पूर्वजन्म की स्मृति हो जाने पर उस अन्ये वणिक् ने अत्यन्त
प्रेम से गद्गद् हो अपने मस्तक को बारम्बार कंपता हुआ उन मूंगों
को हृदय से लगा लिया ॥ २३ ॥

एवं विचेष्टमानं तं दृष्ट्वासर्वसमीपगाः ॥

ग्रहितत्वं मन्यमाना आसन् सर्वे सुविस्मिताः ॥ २४ ॥

एवं विचेष्टमानं विचेष्टयन्तं तमन्धं वणिजं दृष्ट्वा समीपगा
सर्वे मनुष्याः तं ग्रहितत्वं मन्यमानाः सुविस्मिता आश्चर्ययुक्ता
आसन् ॥ २४ ॥

ऐसे आचरण करते हुए उस अंधे वणिक को देख समीप के
रहनेवाले सभी मनुष्य उसे विद्विष्ट समझ आश्चर्य में पड़ गये ॥ २४ ॥

पप्रच्छुस्ते विशांश्रेष्ठं किंत्वया क्रियतेत्विदम् ॥

अपाकरं कृपणवत् कणानां स्पर्शनं हृदा ॥ २५ ॥

ते समीपगा जनाः विशांश्रेष्ठं वणिग्वरं तमन्धं पप्रच्छुः यत्
कृपणदरिद्रिद्विदम् कणानां मुद्रानां हृदा स्पर्शनं अपाकरं
लज्जास्पदं कर्म त्वया किं क्रियते ॥ २५ ॥

उन मनुष्यों ने उस वणिग्वर से पूछा कि दरिद्रियों की भांति इन
मुद्रकों को हृदय से लगाना तुम्हारे सदृश लक्ष्मीपात्रों के लिये
लज्जा की बात है, यह क्या कर रहे हो ॥ २५ ॥

तेषां तेषां वचः श्रुत्वा प्रहस्य वणिजां पतिः ॥

तान्प्रत्यूचे वचः श्लक्ष्णं संशयं नाशयति ॥ २६ ॥

एवं तेषां समीपवर्तिमनुष्याणां वचः वचनं श्रुत्वा वणिजां
पतिस्सौन्ध्यः प्रहस्य विदस्य तेषां संशयं नाशयतिव श्लक्ष्णं
स्निग्धं वचस्तान्प्रत्यूचे उक्तवान् ॥ २६ ॥

इस प्रकार अपने आपसास बैठे हुए मनुष्यों के वचन सुन विदमकर
उस वणिक ने उनके सन्देहों को मानो मिटाता हुआ सुमधुर वचन
बोला ॥ २६ ॥

श्रूयतां यचनं मेघ ग्रहिलोनास्मित्तमाः ॥ १९ ॥

यदेशीया इमे मुग्दास्तदेशे जन्म मेऽभवत् ॥ २० ॥

हे सत्तमाः सत्पुरुषाः ! अद्य मे यचनं युष्माभिः श्रूयताम्
ग्रहिलोनासि इमे मुग्दा यदेशीयास्तदेशे मे मम जन्माऽभवत् ॥ २० ॥

हे सम्मन्य मज्जन ! मेरी जान आप लोग सुनें, मैं पागल नदी हूँ
जिस देश के ये मूंग हैं उसी देश में मेरा जन्म हुआ था ॥ २० ॥

स्वाद्वोऽस्म्यहमेतेषां भ्रामं भ्रामन्यतोऽशिताः ॥

क्षेत्रेषु परकीयेषु सस्यसम्पत्तिशालिषु ॥ २१ ॥

एते मुग्दाः सस्यसम्पत्तिशालिषु सस्यस्य सम्पत्त्या
शालन्ते इति सस्यसम्पत्तिशालानि क्षेत्राणि तेषु बहु सस्य
समृद्धिशालिषु परकीयेषु क्षेत्रेषु गतो भ्रामन् भ्रामन् मया अशिता
भक्षिताः अतोऽहमेतेषां मुग्दातां स्वाद्वोऽस्मि ॥ २१ ॥

धान्य की सम्पत्ति से शोभित गृहस्थों के क्षेत्रों में घूमघूम कर मैंने
इन मूंगों को खाया था इसलिये मैं इनके स्वादों को जानता हूँ ॥ २१ ॥

पैरदं पुष्टिमगमं तेन मेऽतिप्रियाइमे ॥

पुनर्मयत्प्रत्ययार्थं यच्चिन्मन्निशम्पनाम् ॥ २२ ॥

येन हेतुना यैर्मुग्दैरदं पुष्टिमगमम् तेन कारणेन त इमं मे
मम अतिप्रियाः सन्ति मयत्प्रत्ययार्थं विश्वासार्थं यत् पुनोऽस्मि
कथयामि तन्निशम्पनाम् ॥ २२ ॥

जिस हेतु इन मूंगों ने मैं पाता पोता गया था इस विषय में मूंग
मुझे अत्यन्त प्रिय हैं फिर भी आप लोगों के विश्वास के लिये मैं
बतला दूँ कि मुनिवै ॥ २२ ॥

सागरोद्यालुकापूर्णोमहानस्ति महीतले ॥

उत्तंकस्याश्रमः पूर्वं यथासीद्वै महामुनेः ॥ ३० ॥

सर्वैरयः स्थनिकटस्थितान्मनुष्यान्पदकथयत् । तदेवस्कन्दोऽ-
गस्त्यं कथयति । महीतले पृथ्वीतले घालुकापूर्णोमहान् सागरोस्ति
यत्र पूर्वं उत्तंकस्य महामुनेराश्रमआसीत् ॥ ३० ॥

इस पृथ्वी तल में बालू से भरा हुआ एक बहुत बड़ा सागर था
जहाँ पर महामुनि उत्तंक का आश्रम था ॥ ३० ॥

तद्देशेस्ति महातीर्थं चारुण्यां दिशि सप्तमाः ॥

कपिलायतनं नाम महापातकनाशनम् ॥ ३१ ॥

तद्देशे तत्प्रदेशे अत्रदेशशब्दस्तत्स्थानवाचकः । अर्थात्
तत्स्थाने महर्षेरुत्तंकस्याश्रमाद्धारुण्यां चरुणस्पतिशा चारुण्यां तस्यां
दिशि हे सप्तमाः सप्तमाः महापातक नाशनं कपिलायतनं नाम
महातीर्थमासीत् ॥ ३१ ॥

हे सप्तम ! उस प्रदेश में उत्तंक मुनि के आश्रम से पश्चिम दिशा में
महापापों के नाश करनेवाला कपिलायतन नाम का एक महातीर्थ है ॥ ३१ ॥

तृणानि चरतोऽरण्ये मृगीभिः सहितस्यमे ॥

जन्तुदंशोद्भवाः सर्जः शिरः श्रुतगोरजायत ॥ ३३ ॥

अरण्ये पने मृगीभिः सहितस्य तृणानि चरतोमं शि
श्रुत्योः मस्तके कर्णयोश्च जन्तुदंशोद्भवा-जन्तुदंशनग्ना
सर्जरजायत ॥ ३३ ॥

वन में मृगियों के साथ तृणों को चरता था तब मेरे शिर औ
कानों में किसी जन्तु के काटने से खज उत्पन्न होगई ॥ ३३ ॥

ततः कण्डुनिवृत्त्यर्थं त्रिवक्त्रे वृक्षकोटरे ॥

वारं वारं शिरोघर्षं चक्रेनत्पशुबुद्धितः ॥ ३४ ॥

ततस्तदनन्तरं कण्डुनिवृत्त्यर्थं त्रिवक्त्रे वृक्षकोटरे वृक्षशाखे
पशुबुद्धितः अज्ञानात् वारं वारं शिरोघर्षं शिरस्संघर्षणं चक्रे ॥ ३४ ॥

तिसके बाद वृक्ष की त्रिबांक कोटर में अज्ञानवश खज मिटाने
के हेतु बारबार मस्तक को रगड़ा ॥ ३४ ॥

ततः शिरोमे संसक्तं वक्त्रे तद्वृक्षकोटरे ॥

अत्यर्थं चकितोद्विभ्रोवलाग्निस्सारयन् शिरः ॥ ३५ ॥

श्वासोच्छ्वासकृतायासः सहसा पतितोभुवि ॥

ततरशरीरमत्यक्षं विलुठन् सन्नितस्ततः ॥ ३६ ॥

तस्तदनन्तरं वक्त्रे तद्वृक्षकोटरे तद्वृक्षीयवक्त्रशाखायां मे मम
शिरः संसक्तं संलग्नं जातं । तच्छिरो वलाग्निस्सारयन् अत्यर्थमतिशयेन
चकित आकस्मिकघटनाप्राप्त उद्विग्नश्च एवं श्वासोच्छ्वासकृतायासः
उद्वेगवशात् श्वासोच्छ्वासश्च संजातस्तस्मादायासः संजातस्तेन सहसा
भुविपतितः शिरोमे वक्त्रकोटरे लग्नमेवासीदतस्ततो विलुठन्
शरीरमत्यक्षम् शरीरत्यागमकरवम् ॥ ३५, ३६ ॥

ततः सर्वे विस्मितास्ते तत्पित्रे संन्यवेदयन् ॥

पिता सर्वान् संदिदेश सत्वरं गम्यतामिति ॥ ४३ ॥

ततस्तदनन्तरम्वसिता आश्चर्यज्ञतास्ते सर्वे तत्समीपवर्तिनो
जनाः तत्पित्रे संन्यवेदयन् पिताच सत्वरं शीघ्रं गम्यतामिति सर्वा-
न्संदिदेश आशुप्तवान् ॥ ४३ ॥

इसके बाद उस अन्ये वशिष्ठ के निकटवर्ती सभी मनुष्यों ने
आश्चर्य माना और इन सब बातों को उसके पिता से कहा, पिता ने
उसी समय सब को उस तीर्थ में जाने की आज्ञा दी ॥ ४३ ॥

पिषासुस्तानभिप्रेत्य पुनरन्योऽब्रवीदिदम् ॥

निष्कास्य मच्छिन्नः सद्भिस्माद्बृक्षस्य कोटरात् ॥ ४४ ॥

प्रक्षेप्य शलिले शुद्धे तत्तीर्थीये महादमुने ॥

ततोऽपद्रावितशुभमागता द्रवपथ द्रुतम् ॥ ४५ ॥

तान् पित्राश्रितान् मनुष्यान् पिषासुनभिप्रेत्यार्थादिमेऽवश्यं
गमिष्यन्तीति बुद्धान्धः पुनरब्रवीदबोचत् यत्तस्यबृक्षस्य कोटरा-
न्मच्छिन्नोनिष्कारय सद्भिस्माधुभिर्भवद्भिर्महादमुने तत्तीर्थीये शुद्धे
शलिले जले प्रक्षिप्य ततोऽपद्रावि तदयागता यूयं द्रुतम् शीघ्रं
द्रवपथ ॥ ४४, ४५ ॥

पिता से आज्ञा पाकर उस तीर्थ पर जाने के लिये उद्यत उन
मनुष्यों को जान, उस अन्ये ने फिर कहा कि मेरा शिर जो अबनष्ट उस
वृक्ष के कोटर में फंसा हुआ है उसे निकाल कर उस महान् आश्चर्यवागी
तीर्थ के शुद्ध जल में डाल देना तब जो होगा सा यही आज्ञा पर
आर लोग शीघ्र ही देखना ॥ ४४, ४५ ॥

ततस्ते तदनुजागा दृष्टास्तं देशमागमन् ॥

तत्तीर्थपरमामाशु वृक्षं वृक्षमत्तादयः ॥ ४६ ॥

मेरा शरीर पान होने के बाद जो हुआ मेरा कहना है साबकन होकर मुनिये ! उस तीर्थ में कृपे और भुगाली ने मेरे मृतशरीर को भक्षण किया ॥ ६६ ॥

जल प्रवाहेर्वहृतैः प्राशृदकालं घनाकुले ॥

प्रक्षिप्तानितदस्थीनि कापिलीये सरोवरे ॥ ४० ॥

घनाकुले सर्वतोमेघाधिष्ठे प्राशृदकाले वर्षतां बहुलैर्जल प्रवाहै स्तदस्थीनि मम मृतदेहस्य कापिलायं सरोवरे प्रक्षिप्तानि ॥ ४० ॥

सर्वतो मेघाच्छन्न वर्षाकाल में जब अति वेग से जल का प्रवाह चला तो मेरे शरीर की हड्डियां बहकर कपिल सरोवर में पड़ गई ॥ ४० ॥

तत्तीर्थवरमाहात्म्याज्जातोहं वणिजांकुले ॥

धनीनां पुण्यकर्तृणां महाभोगभुजांभुवि ॥ ४१ ॥

तत्तीर्थवरमाहात्म्यादहंभुवि महाभोगभुजां पुण्यकर्तृणां धनीनां वणिजां कुले जात उत्पन्नः ॥ ४१ ॥

उस उत्तम तीर्थ के माहात्म्य से इस पृथ्वी में महाभोगशाली पुण्यकर्मा और धनी वैश्य के कुल में मेरा जन्म हुआ ॥ ४१ ॥

एतत्सर्वं समाख्यातं भवतां प्रीतयेऽनघाः ॥

मदुक्तंचेन्नमन्यध्वं गत्वा पश्यथ सत्वरम् ॥ ४२ ॥

हे अनघाः पुण्यजनाः एतत्सर्वं भवतां प्रीतये मया समाख्यातं चेन्मदुक्तं न मन्यध्वं तदा सत्वरं गत्वा पश्यथ ॥ ४२ ॥

ऐ पुण्यशाली निकटवर्तियो ! यह कथा आपलोगों की प्रसन्नता और प्रीति के लिये मैं ने कही है यदि मेरे कहने पर विश्वास नहीं है तो इसी समय जाकर देख लीजिये कि मेरा शिर अचतक उस वृक्षकोटर में पड़ा है ॥ ४२ ॥

तत्तीर्थीय महाजले प्रविष्टमात्रे शिरसित्वंधोगृहे स्वतः
सपमेव पयोजः कमलं तस्य पत्रं तद्वक्षिणी यस्य स कमलसदृश
नेत्रः सद्यस्तत्कालंजातः ॥ ४८ ॥

उस तीर्थ के महोत्तम जल में उसका मस्तक पड़ते ही यहाँ
अपने घर पर उस अन्धे के दोनों नेत्र अपनेआप उसी समय कमल के
पत्रों के सदृश स्वच्छ होगए ॥ ४८ ॥

तत्र तत्परपतां नृणां रोमांचं समजायत ॥

वैरयोनिषेव्य तत्तीर्थं देहं त्यक्त्वादिचं ययौ ॥ ५० ॥

तत्र तत्परपतां नृणां मनुष्याणां रोमांचं समजायत । अर्थात्ती-
र्थमक्त्या सर्वे विद्वलावभूवुरितिभावः अन्धस्पृता स वैश्य-
स्तदनन्तरं तत्तीर्थं निषेव्य तत्तीर्थं यासं कृत्वा तत्र देहं त्यक्त्वा
दिवं स्वर्गं ययौ ॥ ५० ॥

इस महान आश्चर्यकारी दृश्य को देख सबको रोमांच होगया
और उस अन्धे का पिता उसी समय गृह त्याग कर कपिल तीर्थ का
वाप करने चला गया । बड़ी कुछ दिन तीर्थ 'सेवन' कर स्वर्गधाम
को गया ॥ ५० ॥

एतादृहनिर्मलं तीर्थं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥

महीपृष्ठे महाभाग ! किञ्चिदेव भविष्यति ॥ ५१ ॥

हे महाभाग ! महीपृष्ठे पृथिव्यां सद्यः प्रत्यय कारकम्
एतादृहनिर्मलं तीर्थं किञ्चिदेव भविष्यति ॥ ५१ ॥

हे महाभाग ! इस पृथ्वी में तत्काल विरवास करानेवाला ऐसा
निर्मल तीर्थ बिरलाही कोई होगा ॥ ५१ ॥

ततस्तदनन्तरं तदनुज्ञातास्तरिष्वानुज्ञातास्तो ह्यष्टाः प्रनय-
मानसास्तं देशं आगमन् तत्तीर्थवरमासाद्य प्राप्त्वा ध्रुवं इदं
अलोकयन् ॥ ४६ ॥

तदनन्तर उसके पिता की आज्ञा पा प्रसन्न होकर वे मनुज
उस देश में गये और उस तीर्थ के प्रत्येक वृक्ष में उस का छिर
ढूँढ़ने लगे ॥ ४६ ॥

कस्मिंश्चिद्वृक्षकुहरे मार्गयद्भिस्त्वरान्वितैः ॥
दृष्टं मार्गं शिरः शुष्कं सशृङ्गं हृष्टमानसाः ॥ ४७ ॥
गृहीत्वा तच्छिरश्शीघ्रं तस्य वैश्यस्य वाक्यतः ॥
प्राक्षिपन्तीर्थशिले किं भवेदिति विस्मिताः ॥ ४८ ॥

त्वरान्वितैर्दुर्लभं मार्गयद्भिस्त्वेवमस्मिन्नुजैः कस्मिंश्चि-
द्वृक्षकुहरे वृक्षकोटे सशृङ्गं शुष्कं मार्गं शिरोमृगमस्तकं दृष्टम् ।
दृष्टमानसास्तो तस्य वैश्यस्य वाक्यतस्तद्वचनप्रमाणाद्भीष-
तच्छिरोगृहीत्वा तीर्थशिले प्राक्षिपन् ततः किं भवेदित्यवलोक-
नार्थम्विस्मिता अभूवुः ॥ ४७, ४८ ॥

अति श्रमिता से मृग मग्निक को ढूँढ़ने हुए उन मनुष्यों ने किसी वृक्ष
के कोटर (घोल) में मृगा हुआ मृग का छिर शृङ्ग सहित देखा और हर्षित
हो उन निष्ठान उस तीर्थ के जल में धोड़ दिया । इसके बाद क्या
होता है यह देखने के नियम, विस्मित होगये ॥ ४७, ४८ ॥

शिरमिषितमात्रेण तत्तीर्थायमहाजले ॥
अंधः पशोऽज्ञानप्रादः मयोऽज्ञानो गृहे खनः ॥ ४९ ॥

तत्तीर्थीय महाजले प्रविप्तमात्रे शिरसित्वंभोगृहे स्वतः
स्वयमेव पयोजः कमलं तस्य पत्रं तद्वचिणी यस्य स कमलसदृश
नेत्रः सद्यस्तत्कालंजातः ॥ ४८ ॥

उस तीर्थ के महोत्तम जल में उसका मस्तक पड़ते ही यहां
अपने घर पर उस अन्धे के दोनों नेत्र अपनेआप उसी समय कमल के
पत्रों के सदृश स्वच्छ होगए ॥ ४८ ॥

तत्र तत्परयतां नृणां रोमांचं समजायत ॥

वैश्योनिषेव्य तत्तीर्थं देहं त्यक्त्वादिदं ययौ ॥ ५० ॥

तत्र तत्परयतां नृणां मनुष्याणां रोमांचं समजायत । अर्थात्ती-
र्थमकृत्या सर्वे विह्लाचभूवुरितिभावः अन्धस्पृष्टता स वैश्य-
स्त्वदनन्तरं तत्तीर्थं निषेव्य तत्तीर्थे वासं कृत्वा तत्र देहं त्यक्त्वा
दिदं स्वर्गं ययौ ॥ ५० ॥

इस महान आश्चर्यकारी दृश्य को देख सबको रोमांच होगया
और उस अन्धे का पिता उसी समय गृह त्याग कर कपिल तीर्थ का
वास करने चला गया । यहीं कुछ दिन तीर्थ 'सेवन' कर स्वर्गधाम
को गया ॥ ५० ॥

एतादृहनिर्मलं तीर्थं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥

महीपृष्ठे महाभाग ! किञ्चिदेव भविष्यति ॥ ५१ ॥

हे महाभाग ! महीपृष्ठे पृथिव्यां सद्यः प्रत्यय कारकम्
एतादृहनिर्मलं तीर्थं किञ्चिदेव भविष्यति ॥ ५१ ॥

हे महाभाग ! इस पृथ्वी में तत्काल विश्वास करानेवाला ऐसा
निर्मल तीर्थ बिरलाही कोई होगा ॥ ५१ ॥

इतिहासमिमं श्रुत्वा तीर्थमाहात्म्यसूचकम् ॥

नरशुद्धेन मनसा ज्ञानचक्षुरवामुपात् ॥ ५२ ॥

तीर्थमाहात्म्यसूचकमिममितिहासं शुद्धेन मनसा श्रुत्वा
नरोज्ञानचक्षुरवाप्नुयात्प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ५२ ॥

इस तीर्थ माहात्म-सूचक इतिहास को शुद्ध मन से श्रवण करने
से मनुष्यों की ज्ञान दृष्टि होती है ॥ ५२ ॥

इति धीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्वादे कपिलायतनमाहात्म्ये
तीर्थवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।



अथसप्तमाध्यायकथारम्भः ।



(मृत उवाच)

एवमुक्त्वा पुनः प्राह स्कन्दः कुंभोद्भवंतदा ॥
शृणु तीर्थीषमाहात्म्यं मुने किञ्चिन्मयोदितम् ॥ १ ॥

(स्पर्शार्थः)

सूतजी शौनकादि ऋषियों से बोले कि इस प्रकार तीर्थ का
हात्म्य कहकर स्कन्दजी अगस्त्य से बोले कि हे मुनि ! मैं पुनः
ते तीर्थ का माहात्म्य कुछ कहता हूँ, सुनो ॥ १ ॥

पुरा कदाचिदेतस्मिन्तीर्थे स्नानं करिष्यताम् ॥
कार्तिकप्रान्तधस्रेषु वर्षयस्त्रवरेषुचै ॥ २ ॥
समाजोऽभून्मनुष्याणां नाना देशनिवासिनाम् ॥
तस्मिन्समाजे बहवस्समायाता दिदृक्षुः ॥ ३ ॥
कौटुम्बिका भित्त्वश्च साधवोऽसाधयोजनाः ॥

नरकोलाहलाकीर्णं तस्मिन्काले तपोधन ॥ ४ ॥
इतस्ततोभ्रमन्तीहनराः कौतुकमश्रिताः ॥

(स्पष्टार्थम्)

हे तपोधन ! इस प्रकार कई देशों से आयेहुए अनेक मनुष्यों के कोलाहल से परिपूरित इस समाज में केवल समाजदर्शक ब्रितने लोग थे वे इधर उधर घूम रहे थे ॥

नाना पण्याः पदार्थास्तत्समाजे समुपागताः ॥ ५ ॥
चस्त्राणि वृषभा उष्ट्राः ऋषविक्रयकारणात् ॥
क्रेतारः केचिदापता विक्रेतारश्च केचन ॥ ६ ॥

(स्पष्टार्थम्)

उस मेले में कई प्रकार के पदार्थ, कपड़े, बैल, ऊंट बेंचने के निमित्त लाये गये थे और कई खरीदने और बेंचनेवाले भी आए थे ॥ ६ ॥

एवं सम्मिलिते लोके कोलाहलसमाकुले ॥
दर्शन्तीह पण्यानि विक्रेतारो नरान् नरान् ॥ ७ ॥

(स्पष्टम्)

इस प्रकार कोलाहलपूर्ण जन समाज में बेंचनेवाले अपने २ विक्रेयपदार्थ प्रत्येक माहक को दिखाते और पसन्द कराते थे ॥ ७ ॥

तत्रैकः करमः कश्चिदुद्गन्तः पर्यतोपमः ॥
शुलगर्जारयंकुर्वन् सूर्यप्राणि भयंकरः ॥ ८ ॥

(स्पष्टम्)

उस मेले में एक ऊंट बिहने के लिये आया था जो महादुर्गन्त और सब प्राणियों के देखने में महामयंकर एवं बड़े जोर से गर्जना हुआ था ॥ ८ ॥

तत्रैकदा स करमः केतुभिः परिवारितः ॥

केतारः सम्पगुस्तैः सर्वास्तानुष्टूनायकान् ॥ ६ ॥

(स्पष्टार्थम्)

उस मेले में जब एक बार उस ऊंट के चारों तरफ उसके खरीदनेवाले माहक जमा हुए तो उन्होंने उसके मालिक से कहा ॥६॥

वयमेनं ग्रहिष्यामो यदि यूयं प्रदास्यथ ॥

परन्तु सकृदस्मभ्यं परिभ्राज्य प्रदर्शयताम् ॥ १० ॥

(स्पष्टम्)

यदि तुम लोग इस ऊंट को बेचो तो हम लोग लेने को तैयार हैं परन्तु एक बार इस पर चढ़कर और थोड़ा चलाकर हम लोगों को दिखादो ॥ १० ॥

एवं तद्वचनं श्रुत्वा तत्र सामाजिको जनः ॥

न को प्येनं समारोहं मनश्चक्रे भयान्वितः ॥ ११ ॥

(स्पष्टार्थः)

इस प्रकार माहकों की बात सुनकर उस समाज के किसी मनुष्य ने भी भय के बश उस ऊंट पर चढ़ना स्वीकार नहीं किया ॥११॥

कस्य चिद्वाहु जातस्य तत्रासीद्गोलकस्थितः ॥

स आरोहं मनश्चक्रे तमुष्टं मदगर्वितः ॥ १२ ॥

(स्पष्टम्)

उस समाज में एक किसी राजपूत का गोलकपुत्र था उसने जाति के अभिमान से मदगर्वित हो उस ऊंट पर चढ़ना स्वीकार कर लिया ॥ १२ ॥

आगत्य स्वयम्भूतं तान् समाहृत्य क्रमेणकं ॥
अहमेनं समारोक्ष्ये यदि यूयं वदस्यथ ॥ १३ ॥

(स्पष्टार्थम्)

यह गोलक समाज से निहल उन मादकों के सम्मुख आ
कहने लगा कि यदि आपलोग कहें तो मैं इस ऊंट पर चढ़ूंगा ॥ १३ ॥

ततः सर्वेऽनुज्ञातः समारोह्य यथेच्छया ॥
कुर्यस्मत्करणीयं त्वं प्रवीणोऽस्युद्धरोक्षणे ॥ १४ ॥

(स्पष्टार्थः)

तब सब लोगों ने कहा कि शुरी से चढ़ो, तुम ऊंट पर सब
करने में सुबतुर हो, चढ़ना तो हम लोग खीददारों का कर्तव्य
परन्तु यह हमारा काम तुम्हीं करदो ॥ १४ ॥

सावधानतया स्थेपमुद्धोस्ति मदगर्वितः ।
निर्दोषास्मोवपं तत्र स्वेच्छयारोदुमिच्छसि ॥ १५ ॥

(स्पष्टार्थोपम्)

संभाल कर इस ऊंट पर बैठना यह ऊंट मदगर्वित है
लोगों को दोष न देना तुम अपनी इच्छा से चढ़ना चाहते हो ॥ १५ ॥

भयङ्गिर्नैव चिन्त्यं तन्मदगृहे तादृशोद्धोकाः ॥
मया दृष्टाः समारूढाः कोयं स्यादुद्धोशावकः ॥ १६ ॥

(स्पष्टम्)

तुम लोग इसकी कुछ भी चिन्ता न करो मेरे घर ऐसे ऐसे ऊंट
बहुत हैं जिनको मैंने देखा है और सवारी भी की है यह ऊंट
बच्चा क्या चीज है ॥ १६ ॥

एवं सस्मयमागत्य समारोहं तमुष्कम् ॥

संस्थाप्याकर्षयन् पृष्ठ आससाद स सत्वरः ॥ १७ ॥

(स्पष्टार्थी)

ऐसा कह और थोड़ा हंसता हुआ वह गोलक उस ऊंट के पास आया और चढ़ने के लिये ऊंट को खींच कर बैठाया तथा अति शीघ्रता से उसकी पीठ पर बैठ गया ॥ १७ ॥

विभ्रद्वक्रोष्णीपबंधं युवाजातिमदोद्धतः ॥

सकौतुकैः सर्वजनैर्दृष्ट आरुढ़एवमः ॥ १८ ॥

तो युवा जातिमदोद्धतः वक्रोष्णीपबंधं विभ्रन् सकौतुकं सर्वजनैः आरुढ़ एव दृष्टः ॥ १८ ॥

जाति के मद से उद्धत वह युवा देही पगड़ी को धारण किये हुये जब ऊंट पर बैठ गया तब सब लोग कौतुक के साथ देखने लगे ॥ १८ ॥

अनुत्थापिन एवोप्द्रो धावने व्यवलोकिनः ॥

उप्द्रवालपुत्स्यमुप्द्रूप तद्देवोप्द्रिणः पुनः ॥ १९ ॥

सर्वे सामाजिका लोका विस्मयं प्रतिपेदिरे ॥

अनुत्थापितएवोप्द्रोधावने व्यवलोकिनः उप्द्रवालपुत्स्यं विस्मयित्वं तद्देवोप्द्रिणोपि दिशारोदसदसतां उप्द्रवा सर्वे सामाजिका लोका समाव्रत्वा जना विस्मयमार्थं प्रतिपेदिरे प्रातुः ॥

जमी ऊंट को उठवा भी नहीं गया कि वह ऊंट दौड़ता हुआ दिसने लगा, इन तरह उस ऊंट की लियगति तब ऊंट पर चढ़ने वाले की चतुरता देखकर मेले के सभी मनुष्य आश्चर्य में आगे ॥

पादाधानः क्षिप्रपादः किंनिदुःखमिवाननः ॥ २० ॥
 गुणैरस्यमिदंममं रश्मिरस्यममन्वितः ॥
 निगन्तुमिदंममं प्रहाराभ्यां पथारत्नं प्रहरन्मुहुः ॥ २१ ॥
 गुणशास्त्रमनोवेनापृथगापृथगाद्यभ्यामपम् ॥

पादाधानः गुणपादस्याधः क्षिप्रपादः उपद्रुपिमान-
 थकपादः किंनिदुःखमिवाननः अनिसंगदसादस्त्वित्युक्तपास
 गुणैरस्यममं रश्मिं गुणन् रस्यममन्वितः पार्थिवप्रहाराभ्यां कुर्वी
 निगन्तुं ताडयन् गुणशास्त्रमनोवेन पथारत्नं मुहुःप्रहरन् आपृथ्या-
 पृथ्याधाययन् ॥

उपद्रुगेदृश कला में निपुण युवा ने अपने पैरों का न्यास उठन
 रीति से किया था, अलग २ पैर रखे था, एवं कुछ ऊपर के तरफ
 मुख उठाकर ठीक ऊंट के मस्तक की ओर देखा रहा था और अपने पैर की
 पंड़ीयों से ऊंट के पेट में मारता हुआ एवं वृक्ष की डाली से पीछे की तरफ
 ऊंट को मारता हुआ नकल को स्वीच २ कर अति वेग से दौड़ा रहा था ॥

स उपद्रुं स्ववशीकर्तुमनश्चक्रे मदोद्धतः ॥ २२ ॥
 तुदन्ति करभोप्येनं पिपातयिपुरेवसः ॥

स मदोद्धतोपुवा उपद्रुं स्ववशीकर्तुमनश्चक्रे । पिपातयिपुरेव
 सः करभोप्येनं तुदन्ति ॥

उस मदोन्मत्त युवा ने ऊंट को अपने वश में कर लेने का ठान लिया
 और वह ऊंट भी उसको अपनी पीठ से गिराने की इच्छा से
 उच्छ्वालने लगा ॥

प्रशशंसुः केचनोपद्रुं शशंसुः केचनोप्लिषम् ॥ २३ ॥
 अहो ! एष महानुपद्रुः सम्यक्चालयतेत्ययम् ॥
 हरपने करभः क्रूरः किंकरं पातयिष्यति ॥ २४ ॥

केचन उष्ट्रं प्रशंसन्तुः केचन उष्ट्रिणमुष्ट्राहं शशंसुः
प्रभो ! इति आश्चर्ये । एषमहान् उष्ट्री उष्ट्रचालकः । अयं सम्पक्
उष्ट्रं चात्मते अयं क्रूरः करमः स्वाधीनं किंकरं युवानं
मातयिष्यति ॥ २३, २४ ॥

कोई ऊंट की प्रशंसा करते थे कोई ऊंट के सवार की प्रशंसा
करते थे और कहते थे कि अहा ! यह महाचतुर उष्ट्रारोही है
मच्छी तरह ऊंट को चला रहा है । देख पड़ता है कि यह क्रूर करम
उस बेचारे को कहीं अवश्य पटकदेगा ॥ २३, २४ ॥

शृण्वन्नेवं स्वकर्णभ्यामुष्ट्रारोहणपाटवं ॥

पुनः संचोदयामास समुष्ट्ररोपयन् मदात् ॥ २५ ॥

एवं स्वकर्णभ्यामुष्ट्रारोहणपाटवं पाण्डित्यं जनैः कथ्यमानं
शृण्वन् स युवा मदात् रोपयन् शुद्ध्यन्तमुष्ट्रम्पुनः संचोदमास
मेरितवान् ॥ २५ ॥

उस युवा ने इस तरह से अपनी प्रशंसा सुनते हुये गर्व से उस
ऊंट को उचेजित कर अति शीघ्र चलने को मेरित किया ॥ २५ ॥

उष्ट्रोपि रोपमापन्नोविहृतां गतिमास्थिनः ॥

चतुर्भिश्चरणैरुच्चैरुत्पफाल पुनः पुनः ॥ २६ ॥

उष्ट्रोपि उष्ट्रिणः कषायातेन पाण्डिपातेन च रोपमापन्नो
विहृतां कुटिलांगतिं गमनमास्थितः चतुर्भिश्चरणैः पुनः पुनर्वारं
पारमुच्चैरुत्पफाल ॥ २६ ॥

ऊंट भी टालियों के आपात और पैरों की टोकर से कुद होकर
अपने चारों पैर उठा २ कर जोर से कूदने लगा ॥ २६ ॥

स उष्ट्रवलसंक्षिप्तस्वपृष्ठासनसंस्थितिः ॥

च्युतरस्मिप्रतोदोऽभूत् भयश्चेतीकृताननः ॥ २७ ॥

उष्ट्रवलसंक्षिप्तस्वपृष्ठासनसंस्थितिः उष्ट्रवलेन संक्षिप्ता
उत्क्षिप्ता स्वपृष्ठासनस्य संस्थितिः संस्थानं यस्य स उष्ट्रवलसंक्षि-
प्तस्वपृष्ठासनसंस्थितिः करभयलोत्क्षिप्तस्वपृष्ठास्तरणः स युवा
भयश्चेतीकृताननः भयेन श्वेतीकृतमाननं यस्य स च्युतरस्मि
प्रतोदः रस्मिश्च प्रतोदश्च तौ च्युता यस्य स तथाभूतोऽभूत् ॥ २७ ॥

ऊंट के वेग से पीठ का आसन ढीला होगया, युवक के हाथ
से मोहरी गिरगई और उसका मुंह भय के मारे सफेद होगया ॥ २७ ॥

उष्ट्रोऽपि दुष्टोरुष्टस्सन् एनं द्वित्रक्रमान्तरे ॥

सुदुष्टं पातयामास पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २८ ॥

दुष्टउष्ट्रोऽपि रुष्टः क्रुद्धस्मन् पूर्ववैरं जन्मान्तरीयवैरमनुस्मरन्
सुदुष्टं तं युवानं द्वित्रक्रमान्तरोद्विषपादविक्षेपे पातयामास ॥ २८ ॥

उस दुष्ट ऊंट ने क्रोधित होकर पहले के वैर को याद करते हुए
दो तीन ही उच्छाल में उस दुष्ट युवा को गिरा दिया ॥ २८ ॥

एवं तस्मिन्निपतिते कौतुकाकुलचेनसः ॥

परपीडानभिज्ञानाः सर्वे संजहसुर्मुदा ॥ २९ ॥

एवं तस्मिन् युनि निपतिते सति परपीडानभिज्ञाना परस्य
स्वेतरस्य पीडा तस्याभनभिज्ञानं येषां ते अननुभूतपरव्यथाः कौतु-
केन आकुलानि चेतांसि येषान्ते तथोक्ताः सर्वे मुदाद्वेषेण संजहसुः ॥

इम तरह ऊंट की पीठ से उस युवा के गिरजाने पर दूसरों के
दर्द को न जाननेवाले हाथ्यारम के प्रेमी केवल तमाशा देगनेराने
सब बड़े मंद से हंसने लगे ॥ २९ ॥

तं तदा विकली भूतं शकलीकृतकीकसं ॥

उद्धृत्य वेष्टयामासुस्तदीया येच केचन ॥ ३० ॥

तदा तस्मिन्काले विकलीभूतं व्याकुलीभूतं मर्म व्यथयेति
तथा शकलीकृतकीकसं खण्डशोजावाशिरसं तं युवानं तदीयास्तत्र
येच केचन आसँस्ते उद्धृत्योत्थाप्य वेष्टयामासुः वस्त्रेणैतिशेषः ॥

जब वह युवा गिरकर मर्म वेदना से अचेत होगया तथा उसके
शिर के टुकड़े टुकड़े होगये तब उसके आर्त्माय जो लोग वहां थे
उन्होंने उसको उठाकर कपड़े में लपेट लिया ॥ ३० ॥

वाच्यमानोऽपिनधूते मूर्च्छांतुमहर्तांगतः ॥

स क्षणंप्राप्य सुप्राणानुत्ससर्जायुषःक्षये ॥ ३१ ॥

महर्तामकथनीयाम्मूर्च्छाङ्गतः स युवावाच्यमानोऽपि किञ्चि-
त्स्वव्यथां कथयेत्युक्तोऽपि नधूते नावदत् क्षणंप्राप्य क्षणमात्रंस्थित्वा
आयुषःक्षये आयुषोद्भासे सुप्राणानुत्ससर्ज तत्प्राज्ञ ॥ ३१ ॥

महामूर्छा को प्राप्त वह युवा बुलाने से भी नदी बोलता था,
तबभर जाकर आयु के नष्ट होजाने पर अपने माणों को त्यागदिया ॥ ३१ ॥

क्रूरा यमभटास्तत्र मृतं तं नेतुमागताः ॥

षट्पञ्चा स्वनागपाशैस्तु सद्यः संयमनी ययुः ॥ ३२ ॥

क्रूरा निर्दयायमभटायमदृता स्तत्र तं मृतं मृतशरीरं नेतु
मागताः पुनः स्वनागपाशैरस्यविशेषैरग्न्युरूपेण मृतशब्दशरीरं
षट्पञ्चा सद्यस्तत्कालं संयमनी यमपुरीं ययुः ॥ ३२ ॥

वे निर्दयी यमदूत उसके मृत शरीर को अपनी नागफाँस में
बाँध कर यमपुरी में लेगये ॥ ३२ ॥

गत्या निवेदयामासुम्येनदारभिनन्दनम् ॥
 गिरयतमुगन्ध्या चित्रगुप्तमसौदयम् ॥ ३३ ॥

ने यमदूता इत्यादि नन्दनं नत्र यमदूतांगत्वा सविनन्दनं
 यमराजं निवेदयामासुः परमदंष्ट्रापराजस्तु तदप्या चित्रगुप्त
 सोदयन् ॥ ३३ ॥

उन यमदूतों ने उग गृतात्मा को यमराज के सम्मुख उपस्थित
 किया यमराज ने उगके विषय में चित्रगुप्त से पूछा ॥ ३३ ॥

पश्यास्य पुण्यं पापानि किमनेन कृतं भुवि ॥
 चित्रगुप्तस्तस्य लेखं दृष्ट्वा सम्यग्विचारतः ॥ ३४ ॥
 यमं निवेदयामास तस्य कर्म शुभाशुभम् ॥

हे चित्रगुप्त ! अस्य पुण्यं पापानि च त्वंपश्य अनेन भुविकिं
 कृतम् । चित्र गुप्तस्तस्य लेखं विचारतो विचारपूर्वकं सम्यग्दृष्ट्वा
 तस्य शुभाशुभं कर्म यमं निवेदयामास ॥

यमराज ने चित्रगुप्त से कहा कि इसके पुण्य और पापों को
 देखो कि इसने मर्त्यलोक में क्या २ किया है ! चित्रगुप्त ने उसकी
 दिनचर्या विचारपूर्वक देखी और उसके शुभाशुभ कर्मों को यमराज
 से निवेदन किया ॥

कृतं नानेन सत्कर्म जन्मारभ्य प्रभो ! भुवि ॥ ३५ ॥
 पापमेव कृतं नूनं सर्वदा मरणावधि ॥

हे प्रभो ! भुवि मर्त्यलोके अनेन जन्मारभ्य कदापि सत्कर्म
 न कृतं नूनं निश्चयेन मरणावधि पापमेव कृतम् ॥

हे प्रभु ! इसने मर्त्यलोकमें जाकर जन्म से मरण तक कभी सुकृत
 १ किया, मरण पर्यन्त सर्वदा पाप ही पाप किये हैं ॥

एकं तु कृतमेतस्य मनः संशयतीयमे ॥ ३६ ॥

यस्मादेव महापुरुषपांशुना गात्रमुंक्तिः ॥

कपिलक्षेत्रजेनाशु मृत्युमाप महेश्वर ॥ ३७ ॥

हे महेश्वर ! एतस्य तु एकं कृतं कार्यं मे मनः संशयति मन्दे-
हवयव्येयं यस्मात् कारयत् कपिलक्षेत्रजेन कपिलक्षेत्रमंभूतेन
महापुरुषपांशुना अतिविश्रजसा गात्रमुंक्तिः मुंक्तिशरीरः
माशु शीघ्रं मृत्युमाप ॥ ३६, ३७ ॥

हे महेश्वर ! यह कपिलक्षेत्र की धूल से धूमरित होकर मृत्यु
को माशु हुआ है यही इसका एक कृत्य मेरे मन में सन्देहवन् मनीन
होता है ॥ ३६, ३७ ॥

इति यावत् यमः श्रुत्वा कंपयानो निजं शिरः ॥

मोघाच्च यथनं सर्वान्मुक्तोपं नात्र संशयः ॥ ३८ ॥

यमो यमराज इति विश्रुत्वा यावत् श्रुत्वा निजं शिरः कंपयानः
आजन्मकृत्वापयन्धनेनापं मुक्तो नात्र संशय इति यावत् सर्वान्-
मुक्तो वाच ॥ ३८ ॥

विश्रुत्वा वा यह यावत् गुनकर अगता मग्नक दिलाने हुए
सन्देहने अपने सभी वृत्तों से कहा कि यह गुण हो गया अपने आजन्म
के विषे हुए पापों से रहित हो गया इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ३८ ॥

भोदृताः ! भयतां हस्तस्याश्रयु दिगन्तोऽधुना ॥

नापं मारयितुं शक्यो भवतिर्निर्यकदापन ॥ ३९ ॥

(अष्टमम्)

हे दृष्टा ! भयतां हस्तस्याश्रयु दिगन्तोऽधुना ॥
नार्यो कभी नहीं मार देता भवतिर्निर्यकदापन ॥ ३९ ॥

तथा रजांसि त्रीण्येव पवित्राणीह भूतले ॥
 एकं ब्रजरजः पुण्यं चित्रकूटरजस्तथा ॥ ४० ॥
 कपिलालयजं तद्वत्पवित्रं सर्वमुक्तिदम् ॥

इह भूतले त्रीण्येवरजांसि तथापवित्राणि एकं ब्रजरजः
 पुण्यं तथा चित्रकूटरजः पवित्रं तद्वत्सर्वमुक्तिदङ्कपिलालयभ्रंरजः
 पवित्रमस्ति ॥

इस पृथ्वी में तीन ही रज पवित्र हैं एक तो ब्रजरज, दूसरा चित्रकूट
 का रज और तीसरा सब को मुक्ति देनेवाला कपिलालय का रज ॥

तस्मात्पुण्यतरेदेशे पुरं पुण्यकुले तथा ॥ ४१ ॥
 पुण्ये गृहे पुण्यवति जन्मैतस्यप्रदीयताम् ॥

(स्पष्टम्)

इस कारण से पवित्र देश, पवित्र ग्राम, पवित्र कुल और पवित्र
 घर में इसका जन्म दो ॥

एवमुक्ते यमेनाशु सदासौगतपातकः ॥ ४२ ॥

विदर्भदेशेषूत्पन्नः कुण्डिने नगरे यरे ॥

तथा पुण्यधत्ताम्बुशे यणिजां पुण्यपूजिते ॥ ४३ ॥

महाशीलगृहे जातः सुशीलागर्भसंभवः ॥

आरुशील इतिख्यातोऽभवत् सार्धाभिधानवान् ॥ ४४ ॥

आशु शीघ्रं यमेनैवमुक्ते सति सदा सर्वस्मिन्काले गतपातको
 विगतपापोऽसौ विदर्भदेशेषु यरे उत्तमे कुण्डिने नगरे तथा
 पुण्यवती पवित्राणी यणिजां यरपती पुण्यपूजिते महापवित्रे
 शंभे महाशीलनाम्नो विरयस्य गृहे सुशीलाया स्तत्पत्न्या गर्भसंभवः
 आरुशील इतिख्यातः अविद्वानामा सार्धाभिधानवान् नामानुष्ठान-
 तस्य उत्पन्नोऽभवत् ॥ ४२, ४४ ॥

यमराज के कहने पर उसी समय निष्पाप होकर वह मृत युवा विदर्भ देश के पवित्र कुण्डिन नगर में और पवित्र वैश्य वंश में महाशील नामक वैश्य के गृह में उसकी स्त्री सुशीला के गर्भ से उत्पन्न हुआ जिनका नाम चारुशील रखा गया और नामानुरूप उसके गुण हुए ॥

दयावान् दानशीलश्च सुन्दरो वृद्धसेवकः ॥

पिता विवाहयामास सारशीलां विशः सुताम् ॥ ४५ ॥

स चारुशीलनामा वैश्यसुतो दयावान् दानशीलः उदार प्रकृतिकः सुन्दररूपसम्पत्तिसम्पन्नो वृद्धसेवकश्च संजातः तस्य पिता सारशीलां सारशीलानाम्नीम्बिशः सुतां पणिकन्यां विवाहयामास ॥ ४५ ॥

वह चारुशील नाम का वैश्यपुत्र दयावान् दानशील सुन्दर और वृद्धों की सेवा करने वाला हुआ । उसके पिता ने उसका विवाह सारशीला नाम की एक वैश्य कन्या से कर दिया ॥

सापि पतिव्रता ह्यासीत्तस्य पुण्यप्रभावनः ॥

यदा सौ यौवनावस्थाः संजाता भुवि भूरिदः ॥ ४६ ॥

(स्पष्टम्)

वह भी सारशीला अपने पति के पुण्य प्रभाव से पतिव्रता हुई । जब वह चारुशील यौवनावस्था को प्राप्त हुआ तो बड़ानामा और दानी हुआ ॥

तदास्य बुद्धिरुत्पत्ता धनस्योत्पादने मुने ॥

विदर्भदेशजं वस्तु क्रीत्वा स यणिजां पतिः ॥ ४७ ॥

विक्रयार्थं ————— ॥

(स्पष्टम्)

तत्र धनोपार्जन करने की उसकी इच्छा हुई इसलिये विदर्भ देश में जो व्यापारिक वस्तुएँ थी उन का खरीद पुष्कल धन साथ में ले बेचने के लिये वह सिन्धुदेश में गया ॥

तद्वस्तु तत्र विक्रीय तज्जं वस्तु गृहीतवान् ॥ ४८ ॥

तद्वस्तुनः स्वदेशेषु विक्रयं कृतवान् पुनः ॥

एवं गतागतैस्तेन संलब्धं बहुलं धनम् ॥ ४९ ॥

तद्विदर्भदेशजम्बस्तु तत्र सिन्धुदेशे विक्रीय प्राप्तमून्येन निजधनेनच तज्जं सिन्धुदेशजं वस्तु गृहीतवान् तत्पुनः स्वदेशेषु आगत्य विक्रीतवान् एवं गतागतैर्व्यापारकर्मणा गमनागमनैस्तेन वणिजा बहुलं धनं संलब्धम् ॥ ४८, ४९ ॥

सिन्धुदेश में अपने देश की व्यापारिक वस्तुओं को बेचकर जो धन प्राप्त किया उससे, और अपने साथ में जो धन लेगया था उससे सिन्धुदेश की व्यापारिक वस्तुओं को बिक्री अपने देश में आवश्यकता थी संग्रह किया और उनको अपने देश में आकर बेचा एवं बारम्बार आने जाने और व्यापार करने से अल्प काल में ही प्रचुर धन का उपार्जन कर लिया ॥ ४८, ४९ ॥

गच्छतागच्छता तेन पूर्वसंस्कार योगतः ॥

कपिलायतने पुण्ये निवासाः सततंकृताः ॥ ५० ॥

एवं गच्छतागच्छता तेन व्यापारिणा स्वकीय पूर्वसंस्कार योगतः सततं प्रति यात्रायां पुण्ये पवित्रे कपिलायतने कपिलध्वजे मार्गविश्रान्तिभ्यः कृताः ॥

इस प्रकार व्यापार के काम में आते जाते अपने पूर्वजन्म के
कार से प्रत्येक यात्रा में वह पवित्र कपिल मुनि के आश्रम में ही
वास किया करता था ॥ ५० ॥

तत्र स्नातंचदस्तंच सदानिवसतासता ॥

भद्रायुक्तेनमनसा जानं पुण्यमन्तकं ॥ ५१ ॥

तत्र कपिलायतने सदा निवसता वासं कृतवता सता तेन
व्यापारिणा भद्रायुक्तेन मनसा शुद्धचेतसा स्नानंकृतं दत्तं
नैवकृतं तेनानन्तरुपसंस्कारकं पुण्यं जातम् ॥ ५१ ॥

उस कपिलायतन तीर्थ में सदा निवास करताहुआ वह व्यापारी
हो के साथ स्नान और दान भी किया करता था जिसका अनन्त
उप्य उसको प्राप्त हुआ ॥ ५१ ॥

गच्छतोवागच्छनोवा तीर्थं निवसतः कदा ॥

युक्तस्य भ्रातृभिः पुत्रैर्विप्रीर्विद्वद्वरैस्तथा ॥ ५२ ॥

शीतवातनिमित्तेन रोगोजातः कलेवरे ॥

दिवसे दिवसे तस्य रोगः समधिकोऽभवत् ॥ ५३ ॥

सर्वैरयस्तु पूर्वसंस्कारत इहजन्मनिच सदा कपिलायतन
निवासाच्चातिसंस्कारवान्विचारवांश्च बभूवा तः परिणतेवगसि
व्यापारे स्वपुराहितपुत्रभातृवर्गैस्तथान्यैर्विद्वरैस्सहव्यापारार्थं परदेश
गमनागमने प्रवृत्तोऽभवत् एवं परिवाराश्रितस्य तस्यवणिजः गच्छत
आगच्छतो वा कदा कस्मिन्नपिकाले कपिलायतने तीर्थं निवसतः
निवासंकुर्यतस्तस्य कलेवरे शीतवातनिमित्तेन हेतुना रोगस्संजातः
तस्य ॥ ५२, ५३ ॥

वह वैश्य पूर्वजन्म के संस्कार से तथा इस जन्म में व्यापार के अर्थ बारबार विदेश जाने आने के समय उस पवित्रतीर्थ में निवृत्त करने से अत्यन्त उज्ज्वल संस्कार और विचार का हो गया था इसलिये अपनी वृद्धावस्था में सदा के भांति केवल दस पांच नौछ और वस्तुरत्नक तथा क्रय-विक्रय का हिसाब-किताब रखनेवालों के साथ, अब नहीं आता जाता था किन्तु इस अवस्था में आवश्यकीय श्रमों के अतिरिक्त अपने गुरु पुरोहित स्त्री पुत्र माई इत्यादि सब कुटुम्बियों के साथ व्यापार करने के लिये आने जाने लगा । एवं सदा आने और जाने तथा उस तीर्थ में निवास करने की दशा में किसी समय शरीर और वायु के विकार से उसके शरीर में रोग उत्पन्न हुआ और उसकी निवृत्ति के अनेक प्रयत्न करने पर भी रोग दिन दिन बढ़ता ही गया ॥ ५२, ५३ ॥

ततः संचित्य मनसि विवेकी स यणिकूपतिः ॥

चक्रे बहूनि दानानि शास्त्रोक्तानि विधानतः ॥ ५४ ॥

(स्पष्टम्)

तदनन्तर उस विचारवान् यणिकूपति ने अपनी भावी दशा को आने मन में विचार कर अपने साथ के परिदोषों के शास्त्रोक्त उपदेशानुसार अनेक दान पुण्य उस तीर्थ में किये ॥ ५४ ॥

पूर्वं ताम्रतुलां कृत्वा कृत्वा रुप्यतुलां ततः ॥

ततस्त्वर्णतुलां चक्रे श्रीविष्णुमीतये यणिकू ॥ ५५ ॥

(स्पष्टम्)

पहिले ताम्रमय तुलादान, तदनन्तर चांदी का तुलादान, और फिर सोने का तुलादान किया । वह वैश्य जितना दान करता था सो भागा-विहीन और श्रीविष्णुमगवान् के प्रत्यर्थ करता था ॥ ५५ ॥

तथा चान्यानि दानानि श्रद्धाभक्तिगुणैर्मुदा ॥

चक्रेऽसौ यणिजां श्रेष्ठो विद्वद्वाद्यणवाक्यतः ॥५६॥

(स्पष्टम्)

एवं उस श्रेष्ठी ने अपने विद्वानों के आदेशानुसार श्रद्धा और भक्ति से युक्त होकर प्रसन्नता के साथ और भी अनेक दानों को किया ॥५६॥

पुनरन्त्येष्टिदानानि चक्रे साङ्ख्यमुपाश्रितम् ॥

एवं सर्वविधिङ्कृत्वा मनसाध्यानमास्थितः ॥ ५७ ॥

पुनरन्त्येष्टिदानानि मरणानन्तरं पुत्रप्राप्तादिविहित दानानि च स्वयं चक्रे एवं सर्वविधिङ्कृत्वा साङ्ख्यमुपाश्रितम् साङ्ख्य-
चर्णितमानसध्यानं मानसिकदेवार्चनमास्थितः ॥ ५७ ॥

फिर अन्त्येष्टि दान जो मृत्यु के पश्चात् पुत्र प्राप्तादि विहित दान हैं वह भी कर लिया इस प्रकार सब विधि करने के अनन्तर साङ्ख्यशास्त्रानुकूल मानसध्यान में निमग्न हो एकाम्र चित्त करके बैठ गया ॥ ५७ ॥

तस्यक्षेत्रस्य योदेयस्तं देवंशरणद्गतः ॥

एवं प्रवर्तमानस्य यणिजस्तस्य सत्तमः ॥ ५८ ॥

बुद्धिः कापिसमुत्पन्ना नित्यानित्यविवेकिनी ॥

शरण्यस्य प्रसादेन साङ्ख्याचार्यस्य सत्तमा ॥ ५९ ॥

(स्पष्टम्)

हे अगस्त्य ! इस प्रकार ध्यानावस्थित हो उस तीर्थ के देवता श्रीकपिलाचार्य का शरण्य हुआ और सतत ध्यान यज्ञ करने से जब शुद्ध अन्तःकरण होगया तो श्रीकपिलमुनि की प्रसन्नता से नित्यानित्य विवेचिनी सद्बुद्धि उत्पन्न हुई अर्थात् ब्रह्मज्ञान हो गया ॥ ५८, ५९ ॥

बह वैश्य पूर्वजन्म के संस्कार से तथा इस जन्म में व्यापार के अर्थ पारवार विदेश जाने आने के समय उस पवित्रतीर्थ में निवृत्त करने से अत्यन्त उज्ज्वल संस्कार और विचार का होगया था इसलिये अपनी वृद्धावस्था में सदा के भांति केवल दस पांच नौक और वस्तुरत्नक तथा कय-विक्रय का हिसान-किताब रखनेवालों ही के साथ, अब नहीं आता जाता था किन्तु इस अवस्था में आवश्यक मृत्यों के अतिरिक्त अपने गुरु पुरोहित खां पुत्र भाई इत्यादि सब कुटुम्बियों के साथ व्यापार करने के लिये आने जाने लगा । एवं सदा आने और जाने तथा उस तीर्थ में निवास करने की दशा में किसी समय शर्दी और वायु के विकार से उसके शरीर में रोग उत्पन्न हुआ और उसकी निवृत्ति के अनेक प्रयत्न करने पर भी रोग दिन दिन बढ़ता ही गया ॥ ५२, ५३ ॥

ततः संचित्य मनसि विवेकी स वणिक्पतिः ॥

चक्रे वह्नि दानानि शास्त्रोक्तानि विधानतः ॥ ५४ ॥

(स्पष्टम्)

तदनन्तर उस विचारवान् वणिक्पति ने अपनी भावी दशा को अपने मन में विचार कर अपने साथ के पण्डितों के शास्त्रोक्त उपदेशानुसार अनेक दान पुरय उस तीर्थ में किये ॥ ५४ ॥

पूर्वं ताम्रमुलां कृत्वा कृत्वा रुप्यमुलां ततः ॥

ततस्त्वर्णमुलां चक्रे श्रीविष्णुप्रीतये वणिक् ॥ ५५ ॥

(स्पष्टम्)

पहिले ताम्रमय मुलादान, तदनन्तर चान्दो का मुलादान, और फिर सोने का मुलादान किया । बह वैश्य जितना दान करता था सो दाना-विहीन और श्रीविष्णुभगवान् के प्रीत्यर्थ करता था ॥ ५५ ॥

तथा चान्यानि दानानि श्रद्धाभक्तियुतोमुदा ॥

चक्रेऽसौ दण्डिजां श्रेष्ठो विद्वद्वाद्यष्टवाक्यतः ॥५६॥

(स्पष्टम्)

एवं उस श्रेष्ठो ने अपने विद्वानों के आदेशानुसार श्रद्धा और भक्ति से युक्त होकर प्रसन्नता के साथ और भी अनेक दानों को किया ॥५६॥

पुनरन्त्येष्टिदानानि चक्रे सांख्यमुपाश्रितम् ॥

एवं सर्वविधिङ्कृत्वा मनसाध्यानमास्थितः ॥ ५७ ॥

पुनरन्त्येष्टिदानानि मरणानन्तरं पुत्रभ्रात्रादिविहित दाना निच स्वयं चक्रे एवं सर्वविधिङ्कृत्वा सांख्यमुपाश्रितम् सांख्य-
वर्णितमानसध्यानं मानसिकदेवार्चनमास्थितः ॥ ५७ ॥

फिर अन्त्येष्टि दान जो मृत्यु के पश्चात् पुत्र भ्रात्रादि विहित दान हैं वह भी कर लिया इस प्रकार सब विधि करने के अनन्तर सांख्यशास्त्रानुसृत मानसध्यान में निमग्न हो एकाम्रचित्त करके बैठ गया ॥ ५७ ॥

तस्यक्षेत्रस्य योदेवस्तं देवंशरण्यगतः ॥

एवं प्रवर्तमानस्य दण्डिजस्तस्य सत्तमः ॥ ५८ ॥

बुद्धिः कापिसमुत्पन्ना नित्यानित्यविवेकिनी ॥

शरण्यस्य प्रसादेन सांख्याचार्यस्य सत्तमा ॥ ५९ ॥

(स्पष्टम्)

हे अगस्त्य ! इस प्रकार ध्यानावस्थित हो उस तीर्थ के देवता श्रीकपिलाचार्य का शरण्य हुआ और सतत ध्यान यज्ञ करने से जब शुद्ध अन्तःकरण होगया तो श्रीकपिलमुनि की प्रसन्नता से नित्यानित्य विवेकिनी सद्बुद्धि उत्पन्न हुई अर्थात् ब्रह्मज्ञान हो गया ॥ ५८, ५९ ॥

वह वैश्य पूर्वजन्म के संस्कार से तथा इस जन्म में ज्ञान के अर्थ बारबार विदेश जाने आने के समय उस पवित्रतीर्थ में निरत करने से अत्यन्त उज्ज्वल संस्कार और विचार का होना । इसलिये अपनी वृद्धावस्था में सदा के भांति केवल दस पाँच दौड़ और वस्तुरक्षक तथा क्रय-विक्रय का हिसान-कितान रखने लगे । के साथ, अब नहीं आता जाता था किन्तु इस अवस्था में करार-कीय भृत्यों के अतिरिक्त अपने गुरु पुरोहित सी पुत्र भाई इत्यादि सब कुटुम्बियों के साथ व्यापार करने के लिये आने जाने लगा । एवं इस आने और जाने तथा उस तीर्थ में निवास करने की दशा में हिन्दू समय शरीर और वायु के विकार से उसके शरीर में रोग उत्पन्न हुआ और उसकी निवृत्ति के अनेक प्रयत्न करने पर भी रोग दिन दिन बढ़ता ही गया ॥ ५२, ५३ ॥

ततः संचित्य मनसि विवेकी स घणिकूपतिः ॥

अके घट्टनि दानानि शस्त्रोक्तानि धिषानतः ॥ ५४ ॥

(स्पष्टम्)

तदनन्तर उस विचारवान् घणिकूपति ने अपने भारी दण्ड की भाँति मन में विचार कर अपने माघ के पक्षियों के समान उद्देशानुसार अनेक दान पुण्य उस तीर्थ में दिये ॥ ५४ ॥

पूर्वं गात्राणामां कृत्वा कृत्वा कल्पयुतां ततः ॥

ततस्तद्वर्गयुतां अके श्रीविष्णुप्रीतये घणिक ॥ ५५ ॥

(स्पष्टम्)

पहले तत्प्रायः कृत्वा, तदनन्तर काली का मुखदान, श्री विष्णु का मुखदान दिया । वह वैश्य विद्वान् दान करण था । तत्प्रायः कृत्वा श्री विष्णुप्रीतये के अर्थ दान ॥ ५५ ॥

एवं तदासी पापात्मा तत्तीर्थस्य प्रसादतः ॥

प्राप दुःप्राप्यमन्यैर्यत्तद्विष्णोः परमंपदम् ॥ ६२ ॥

एवं तदा तस्मिन्समये तत्तीर्थस्य प्रसादतो महत्त्वतोऽसौ पापात्मा अन्ययोगिभिस्तर्पास्वभिर्दुःप्राप्यं दुर्लभं यद्विष्णोः परमं पदन्तत्प्राप ॥ ६२ ॥

इस प्रकार उस तीर्थ के प्रसाद से उस पापात्मा ने, योगी और तपस्वि को अलभ्य जो विष्णुभगवान् का परम धाम है उसको पाया ॥ ६२ ॥

स सखा चारुशीलोऽभूत्पुण्यशीलसुशीलयोः ॥

रमतेऽपि बैकुण्ठे लोके दिव्यप्रभामये ॥ ६३ ॥

अस्मिंश्लोके बैकुण्ठलोके तस्य समवस्थानम्बुर्णयति । स चारुशीलः पुण्यशीलसुशीलयोः विष्णुपार्षदयोः सखा मित्रमभूद्योऽपि दिव्यप्रभामये बैकुण्ठे रमते ॥ ६३ ॥

वह बैकुण्ठधाम में जाकर भगवान् के पार्षद पुण्यशील और सुशील का मित्र होगया जो आजतक बैकुण्ठ में विहार कर रहे हैं ॥ ६३ ॥

इत्थंभूतानुभावोऽयं दृष्टोदिव्यप्रभाववान् ॥

यस्य माहात्म्यकथने शक्नोनाहं न मे पिता ॥ ६४ ॥

इत्थंभूतानुभावः इत्थंभूतप्रभावः । अनुभावः प्रभावेचेत्यमरः । दिव्यप्रभाववान् दिव्यप्रतापवान् अयं तीर्थराजोदृष्टः दृष्टिविषयगतः । यस्य माहात्म्य कथने नाहं शक्नोमपि पिता शक्तः ॥ ६४ ॥

(अत्रस्कन्दस्तीर्थमाहात्म्यस्पर्शं कष्टांजनयति)

(१) पुण्यशील और सुशील विष्णुभगवान् के दोनों पार्षद के जो निरन्तर भगवान् की सेवा में रहते थे ।

तस्याः प्रादुर्भवादेव जीवन्मुक्तोऽभवत्तदा ॥

परयतां सर्वबन्धूनां ततः स्वदेहमत्यजत् ॥ ६० ॥

तस्याः ज्ञानवत्या बुद्ध्या प्रादुर्भवादुदयादेव स जीवन्मुक्तोऽभवत् । ब्रह्मसाक्षात्कारेण जीवन्मुक्तो भवतीति सांख्योक्तेः । तदन्तरमिदं पांचभौतिकमनित्यं शरीरं रक्षतु जहातुवेति ब्रह्मज्ञानिनामिच्छाधीनमस्त्यतः स इदमनित्यं देहं स्वस्त्रीपुत्रमायादि सर्वबन्धूनां परयतामेवात्यजदर्थी त्परं लोकं जगाम ॥ ६० ॥

-उस ज्ञानबुद्धि के उत्पन्न होतेही वह वैश्य जीवनमुक्त हो गया । क्योंकि ब्रह्म साक्षात्कार जिसको हो जाता है वह जीवन्मुक्त कहाही जाता है, यह सांख्य का मत है । अब रहा मरना जीना सो ब्रह्मज्ञानियों की इच्छा पर है वह चाहे इस अनित्य पांचभौतिक शरीर को रक्खे या परित्याग कर दे, उच्चम ज्ञानी बहुधा त्यागही करते हैं इसलिये अपने बन्धु बान्धव स्त्री पुत्रादि के देखते देखते उसने अपने इस अनित्य शरीर को त्याग दिया ॥ ६० ॥

लोकं वैकुण्ठमगमद्भास्वरं तमसः परम् ॥

यद्गत्वा न निवर्तन्ते शान्ताः संन्यासिनो मलाः ॥ ६१ ॥

शरीरत्यागान्तरं तमोग्न्धकारस्य परम् पारं भास्वरं देदीप्यमानं सत्त्वनीपतेर्निवासस्थानम् वैकुण्ठलोकमगमत् परगत्वा शान्ताः रागद्वेषादिरहिताः अमन्तनाः शुद्धाः संन्यासिनो विरक्ताः न निवर्तन्ते जननमरणाभ्यां रहिता भवन्ति ॥ ६१ ॥

इस स्थूल शरीर को त्याग करने के अनन्तर सूक्ष्म शरीर को धारण कर इस सांसारिक मोहान्धकार से अलग हो कोटि मूर्ख के समान अवस्था हुआ श्रीनन्दमीश्वर के निवासस्थान (वैकुण्ठधाम) को गया । जहाँ ब्रह्मरूप और विशुद्ध मन्यामी जन फिर नहीं आते ॥ ६१ ॥

एवं तदासी पापात्मा तत्तीर्थस्य प्रसादतः ॥

प्राप दुःप्राप्यमन्यैर्यत्ताद्विष्णोः परमंपदम् ॥ ६२ ॥

एवं तदा तस्मिन्समये तत्तीर्थस्य प्रसादतो महत्त्वतोऽसी पापात्मा अन्यैर्योगिभिस्तर्पास्वभिर्दुःप्राप्यं दुर्लभं यद्विष्णोः परमं पदन्तत्याप ॥ ६२ ॥

इस प्रकार उस तीर्थ के प्रसाद से उस पापात्मा ने, योगी और तर्पास्वि को अलभ्य जो विष्णुभगवान् का परम धाम है उसको पाया ॥ ६२ ॥

स सखा चारुशीलोऽभूत्पुण्यशीलसुशीलयोः ॥

रमतेऽपि वैकुण्ठे लोके दिव्यप्रभामये ॥ ६३ ॥

अस्मिंश्लोके वैकुण्ठलोके तस्य समवस्थानम्बुर्णयति । स चारुशीलः पुण्यशीलसुशीलयोः विष्णुपार्षदयोः सखा मित्रमभूद्योऽद्यापि दिव्यप्रभामये वैकुण्ठे रमते ॥ ६३ ॥

वह वैकुण्ठधाम में जाकर भगवान् के पार्षद पुण्यशील और सुशील का मित्र होगया जो आजतक वैकुण्ठ में बिहार कर रहे हैं ॥ ६३ ॥

इत्थंभूतानुभावोपं दृष्टोदिव्यप्रभाववान् ॥

यस्य माहात्म्यकथने शक्नोनाहं न मे पिता ॥ ६४ ॥

इत्थंभूतानुभावः इत्थंभूतप्रभावः । अनुभावः प्रभावेचेत्यमरः । दिव्यप्रभाववान् दिव्यप्रतापवान् अयं तीर्थराजोदृष्टः दृष्टिविषयं गतः । यस्य माहात्म्य कथने नाहं शक्नो न मे पिता शक्नुः ॥ ६४ ॥

(अग्रस्कन्दस्तीर्थमाहात्म्यस्य परां कथां जनयति)

(१) पुण्यशील और सुशील विष्णुभगवान् के दोनों पार्षद थे जो निज्जर भगवान् की सेवा में रहते थे ।

इस तरह के प्रभाव वाला स्वर्गीय मनाप से युक्त यही तीर्थस्नान
देखा गया है जिसका महाहास्य वर्णन करने में न मैं समर्थ हूँ न मेरे
बिना शिखरी समर्थ हैं ॥ ६४ ॥

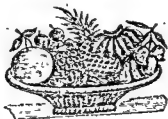
इतिहासमिमं पुण्यं शृणुयाच्छ्रावयेद्ययः ॥
स्वस्वदेहान्तमासाद्य वैकुण्ठे यास्यति भुवम् ॥ ६५ ॥

(अथमध्यायोपसंहार एव)

इस पुण्य पवित्रमितिहासं यः शृणुयात् यश्च श्रावयेत् । स
स्वस्वदेहान्तमासाद्यार्यान् पुण्यायुः पर्यन्तं भोगं भुक्त्वान्ते भुवं
वैकुण्ठे यास्यति गमिष्यति । बारम्बारं श्रवणाच्छ्रावणाचप्राप्तयद्वयं
तत्तीर्थसेवनेन मुक्तिर्भविष्यतीति तात्पर्यम् ॥ ६५ ॥

इस पवित्र इतिहास को जो सुनेगा और सुनावेगा वे दोनों पूर्ण
आयु पर्यन्त सांसारिक भोगों को भोगकर देहान्त होने पर वैकुण्ठधाम
को जायेंगे । इसका भाव यह है कि बारबार इस इतिहास को सुनने
सुनाने से तीर्थ में श्रद्धा होगी पीछे तीर्थस्नान तीर्थवासादि के द्वारा
मुक्ति होगी ॥ ६५ ॥

इति धीस्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्पादे कपिलायतनमहाहास्ये
वैश्यमोक्षो नाम सप्तमोऽध्यायः ।



अथाष्टमाध्यायकथारम्भः ।



(सूत उवाच)

इत्युक्त्वा पुनरप्याह श्रद्धाभक्तियुतं मुनिम् ॥
तत्तीर्थमहिमोपेतं भगवानग्निभूर्यचः ॥ १ ॥

सूतः स्वशिष्यान् कथयति यदित्युक्त्वार्थात्सप्तमाध्यायकथां
कथित्वा पुनरप्यग्निभूर्भगवान्स्कन्दः श्रद्धाभक्तियुतं मुनिमगस्त्यं
तत्तीर्थमहिमोपेतंवच आह ॥ १ ॥

सूतजी अपने शिष्यों से बोले कि स्कन्द भगवान् ने इस प्रकार
सप्तमाध्याय की कथा सुनाने के पश्चात् श्रद्धा भक्ति से संयुक्त अगस्त्य
मुनि से फिर भी उस तीर्थ की महिमा से संयुक्त वचन कहना आरंभ
किया ॥ १ ॥

(स्कन्दोवाच)

पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि तीर्थस्यास्य महाद्भुतम् ॥
महिमानं मुनीशान ! सावधानतया शृणु ॥ २ ॥

स्कन्दोऽगस्त्यं कथयति यत् हे मुनीशान ! अगस्त्य !
पुनरन्यन्महाद्भुतं महाश्चर्म्यकरमस्य तीर्थस्य महिमानं प्रवक्ष्यामि
कथयामि तत्सावधानतया सावधानेन मनसा शृणु ॥ २ ॥

स्कन्दजी ने अगस्त्य मुनि से कहा कि हे मुनिधेष्ठ ! फिर उसी
तीर्थ की महाश्चर्म्यकारिणी दूमरी महिमा कहना हूं, सावधान होकर
सुनो ॥ २ ॥

महाकुलीनोविप्रोऽमृन्मद्रदेशेषु कथन ॥

धर्मात्मा कृपिकर्ता च दयावान् दीनवत्सलः ॥ ३ ॥

सुरीलः साधुसंसर्गो दानशीलः क्षमान्वितः ॥

महाधनी शुद्धभोगो भाग्यवाञ्छ जितेन्द्रियः ॥ ४ ॥

मानदोमानहीनेभ्यो दिनेभ्योऽन्नप्रदायकः ॥

विष्णु माहात्म्यसुश्रोता विष्णुभक्तिपरायणः ॥ ५ ॥

धर्मात्मा कृपिकर्ता दयावान् दीनवत्सलः सुरीलः साधु-
संसर्गो दानशीलः क्षमावान् महाधनी शुद्धभोगी । धनवतां
व्यसनबाहुल्याच्छुद्धभोगामाशंस्य उक्तम् शुद्धभोगः । विद्यमानो-
पकरणेष्वपि सात्विकभोगकर्त्ता । भाग्यवान् जितेन्द्रियोमानहीने-
भ्योमानदोमानदाता दीनेभ्योदरिद्रेभ्योऽन्नप्रदायकोऽन्नदाता
विष्णोर्माहात्म्यस्य सुश्रोता विष्णुभक्तिपरायणोमहाकुलीनः
कथन विप्रोमद्रदेशेष्वभूदभवत् ॥ ३, ४, ५ ॥

मद्रदेश में महाकुलीन धर्मात्मा, खेती का काम करनेवाला,
दयावान्, दीनों का प्रतिपालक, सुरील, साधुओं की संगति करनेवाला,
दानशील, क्षमाशील, महाधनी, सात्विक भोग करनेवाला, भाग्यवान्,
जितेन्द्रिय, मानहीनों को मान देनेवाला, दरिद्रियों को धन देनेवाला,
विष्णुमाहात्म्य का श्रोता, विष्णु भगवान् की भक्ति में परायण एक
ब्राह्मण रहता था ॥ ३, ४, ५ ॥

इदंगुणविशिष्टस्य ब्राह्मणस्य तपोधन ॥

धर्मपत्न्यां तदातस्य सूनवोवहवोऽभवन् ॥ ६ ॥

हे तपोधन ! इदंगुणविशिष्टस्य तस्य ब्राह्मणस्य धर्मपत्न्या
वहवः सूनवोऽभवन् यभूवुः ॥ ६ ॥

हे अगस्त्य ! इस प्रकार के उत्तम गुणों से सम्पन्न उस ब्राह्मण के उसही धर्म पत्नी से अनेक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥

तेपि धर्मपराः सर्वे पितृधर्मपरायणाः ॥
महात्मानो धर्मलब्धा वभूतुर्धनवर्धिनः ॥ ७ ॥

ते सर्वे पुत्रा अपि धर्मपराः धर्मनिष्ठाः पितृधर्मपरायणा
महात्मानो धर्मलब्धा धर्मोपाजनाः धनवर्द्धिनो धनवृद्धिकर्तारश्च वभूवुः
॥ ७ ॥

उसके ये पुत्र भी पिता के सदृश धर्मिष्ठ महात्मा तथा धर्मपूर्वक
पत्नी लाभ करने और धन को बढ़ानेवाले हुए ॥ ७ ॥

जातेषु तेषु पुत्रेषु गृहभारवहेषु च ॥
यात्रार्थं सर्वतीर्थाणां ताननुज्ञाप्यनिर्घयौ ॥ ८ ॥

स ब्राह्मणो गृहभारवहेषु तेषु पुत्रेषु जातेषु तान् पुत्रान-
नुज्ञाप्य गृहभारं समर्प्य सर्व तीर्थानां यात्रार्थं निर्घयौ मतवान् ॥ ८ ॥

जब उसके सभी पुत्र गृह का भार संभालने योग्य हो गये तो
उनको गृह कार्य में नियुक्त कर वह ब्राह्मण तीर्थों की यात्रा करने
को चला गया ॥ ८ ॥

तदा तीर्थप्रसंगेन चक्रे पृथ्वीप्रदक्षिणम् ॥
तेषु तेषु च तीर्थेषु सस्नौ स प्रमुदान्वितः ॥ ९ ॥

तदा तदनन्तरं तीर्थप्रसंगेन तीर्थव्याजेन स विप्रः पृथ्वी
प्रदक्षिणं चक्रे कृतवान् । येषु येषु तीर्थेषु गतस्तेषु तेषु च प्रमुदा-
न्वितो हर्षेण संयुक्तः सस्नौ स्नानं कृतवान् ॥ ९ ॥

तिसके बाद उसी तीर्थयात्रा के प्रसंग में पृथ्वी की प्रदक्षिणा की ।
वह जिन तीर्थों में गया उन २ तीर्थों में बड़े हर्ष के साथ स्नान किया ॥ ९ ॥

यत्पयः यस्य सरसः पयसादुग्धेनसमम् तुल्यं पयोजलं
पशवोपिनिपीय पीत्वा मानवीयोनिमासाद्य सद्यस्तत्कालं शुद्धि
समन्विता भवन्तीति शेषः ॥ १३ ॥

जिस कपिलसर का दूध के समान जल पीकर पशु भी तत्काल
मनुष्य-योनि पाकर शुद्ध होजाते हैं ॥ १३ ॥

तत्सरःसमनुप्राप्य सविश्रान्तमना अभूत् ॥

तत्रैव क्षेत्रप्रवरे क्षेत्रसंन्यासमाश्रितः ॥ १४ ॥

तत्सरस्समनुप्राप्य तत्कपिलसरोवरनागत्यतीर्थयात्रयापरि-
श्रान्त स ब्राह्मणोविश्रान्तमना अभूत् । तत्रैव क्षेत्रप्रवरे स क्षेत्र
संन्यासमाश्रितः क्षेत्रसंन्यासं धृतवान् ॥ १४ ॥

उस कपिलसर पर आकर समस्त तीर्थों के परिभ्रमण से परिश्रान्त
उस ब्राह्मण ने विश्राम करने की इच्छा की और उसी उत्तम क्षेत्र
में क्षेत्र-संन्यास लेलिया ॥ १४ ॥

यावज्जीवमिदंक्षेत्रं नत्यक्षामि कदाचन ॥

इतिपोनिश्चयश्चित्ते सक्षेत्रन्यास उच्यते ॥ १५ ॥

यावज्जीवं जीवनपर्यन्तमिदंक्षेत्रं कदाचन नत्यक्षामि न
त्यजामीति यश्चित्ते निश्चयस्स क्षेत्रन्यास उच्यते ॥ १५ ॥

जबतक जीवन रहेगा तबतक इस क्षेत्र को कभी त्याग नहीं
करूंगा इस मानसिक निश्चय को क्षेत्र-संन्यास कहा जाता है ॥ १५ ॥

तथा स मद्रदेशीयोविप्रस्तीर्थशिरोमणौ ॥

तर्त्तीर्थदैवतं चक्रे शरणं मरणावधि ॥ १६ ॥

तथा तदनन्तरं म मद्रदेरीगोविप्रोगाम्नस्तीर्थशिरोमणौ
तीर्थराजे तर्पीर्धैवतं कपिलमुनिं मरणावधि मरणपर्यन्तं
शरणं चक्रे कृतवान् ॥ १६ ॥

उमके अनन्तर वट मद्रदेरी जात्राय उग तीर्थ शिरोमणि कपिल
क्षेत्र में मरणावधि तीर्थ देव कपिल भगवान् का शरण्य हो गया ॥ १६ ॥

एवं निवसतस्तस्य तस्मिंस्तीर्थे सरोवरे ॥

व्यतीयुः शरदः पंच स्नातन्निपथणं सदा ॥ १७ ॥

एवं तस्मिन्तीर्थसरोवरे निवसतोनिवासं कुर्वतस्त्रिपथं स्नात
स्तस्य विप्रस्य पंचशरदः पंचवर्षाणि व्यतीयुः ॥ १७ ॥

एवं कपिलतीर्थ में निवास करते और त्रिकाल स्नान करते उस
ब्राह्मण को ५ वर्ष बीतगये ॥ १७ ॥

सम्प्राप्ते पंचमे वर्षे शुद्धभावेन सत्तम ॥

तुष्टाव तं तीर्थवरं सांख्यबुद्धिप्रवर्तकम् ॥ १८ ॥

पंचमे वर्षे सम्प्राप्ते सांख्यबुद्धिप्रवर्तकं सांख्यबुद्धिप्रदातारं
तं तीर्थवरं शुद्धभावेन तुष्टाव स्तुतिञ्चकार ॥ १८ ॥

पांचवां वर्ष जब प्राप्त हुआ तो शुद्ध भाव से उस ब्राह्मण ने
सांख्यबुद्धि के प्रवर्तक उस तीर्थवर की स्तुति की ॥ १८ ॥

✽ तीर्थराजस्तुतिः ✽

संकीर्णं करणं पापं नाना चरणकारणं ॥

यदि स्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥ १९ ॥

अजातीयं तथा पापं जाताजातक्षयं करम् ॥

यदि स्नातं कापिलीये किंतत्पातकतोभयम् ॥ २० ॥

मलिनीकरणं पापं महामलफलप्रदम् ॥
 यदि स्नातं कापिलीये कितत्पातकतोभयम् ॥ २१ ॥
 जाति भ्रंशकरं पापं कृतदुर्पोनिदंभवे ॥
 यदि स्नातं कापिलीये कितत्पातकतोभयम् ॥ २२ ॥
 उपपातक संज्ञयत् कूटशाल्मलिदायकम् ॥
 यदि स्नातं कापिलीये कितत्पातकतोभयम् ॥ २३ ॥
 अतिपापफलं पूयकुण्डेऽधोमुखपातनं ॥
 यदि स्नातं कापिलीये कितत्पातकतोभयम् ॥ २४ ॥
 महापापं महार्पीडकुंभीपाकफलप्रदम् ॥
 यदि स्नातं कापिलीये कितत्पातकतोभयम् ॥ २५ ॥
 यानिकानि च पापानि भवन्तु भुवनत्रये ॥
 यदि स्नातं कापिलीये कितत्पातकतोभयम् ॥ २६ ॥
 सर्वाण्यघानि नश्यन्ति तीर्थराट् ते प्रसादतः ॥
 इति संचिन्त्य मनसा त्वामहं शरणं गतः ॥ २७ ॥

नोट—यद्यपि तीर्थराज स्तुति का अर्थ नहीं लिखा गया है तथापि स्तुति में बहुत से पापों के नाम लिखे गए हैं उनके लक्षण लिखना अवश्य है अतः उनका विवरण और उनसे अतिरिक्त पापों की नामावली सांन वर्ग में विरक्त करके लिखता हूं क्योंकि स्तुति में जितने पाप परिगणित हैं उनसे अतिरिक्त पापों की भी गणना पृथक् रूप में उनके उनके नामों से नहीं लेकर एकत्रही स्तुति के अन्त में “यानि कानि च पापानि” इस श्लोक में अशेष विशेष कुल पापों को लेही लिया गया है अतः नीचे की नामावली महापातक, पातक, उपपातक इन तीन भेदों से है फिर उपपातकों के भी दो भेद हैं जिनमें कितनों से बचना

इति संस्तुयत स्तस्य विप्रस्य कलशोद्भव ॥

हृदि कोपि प्रकाशोऽभूद् ज्ञान ध्यांतनाशन ॥ २८ ॥

हे कलशोद्भव ! इति एवं संस्तुयत स्तुति कुर्वतस्तस्य विप्रस्य
हृदि हृदये अज्ञान ध्यांतनाशनः कोपिप्रकाशोऽभूत् । तर्पणान्न
प्रसादत्त हृदयान्धक रोमष्ट ॥ २८ ॥

हे अगस्त्य ! इस प्रकार स्तुति करता हुआ उस ब्राह्मण का हृदय
में अज्ञानरूपी अन्धकार को नाश करनेवाला एक प्रकार उत्पन्न हुआ ॥ २८ ॥

संभव है और कितनों से बचना गृहस्थाश्रम महाभयसम्भव है
जिनका बोध नामावली देखने से स्वतः पाठक और श्रोताओं
को होजायगा अतः उनको पृथक् नहीं किया है ।

महापातकनामानि सोपपातकानि ।

महापातक तो पांच ही हैं १ ब्रह्महत्या २ मद्यपान ३ सुवर्ण की
चोरी ४ गुरुपत्नीगमन ५ इनके संसर्ग । और जितने १ छून मछून
का अविचार २ संकरी करण ३ मलिनी करण ४ अपात्री करण
५ जातिभ्रंशकरण ६ अविहितधर्म का करना ७ कर्म का लोप
करना ८ रसवेचना ९ कन्याविक्रय करना १० अरव विक्रय
११ गोविक्रय १२ सर विक्रय १३ उष्ट्र विक्रय १४ कासी विक्रय
१५ बकरे आदि पशुओं का विक्रय १६ अरना घर बेचना १७ नीली
विक्रय १८ जिस वस्तु को खरीदने की सामर्थ्य नहीं उसके बेचना
१९ सौदा छिमी तरह का बेचना २० जल में रहनेवाले जानवर का
विक्रय २१ स्थल जन्तु का विक्रय २२ आकाश में रहनेवाले जन्तु
का विक्रय २३ व्यर्थ वृत्त का काटना २४ अणु का न देना २५ ब्रह्मण्य
का हन्य करना २६ देवत्व का हान्य करना २७ राक्षस का हान्य
करना २८ परद्वय का अन्वहान्य करना २९ तेज, धी आदि वस्तुओं
का अन्वहान्य करना ३० कृत चमना ३१ लोहा आदि वस्तु का ।

तदायं सुतपाविप्रस्तुरीयज्ञानभूमितः ॥

दरपमानं जगज्जातं ददर्श हृदि चित्रवत् ॥ २६ ॥

तदा तस्मिन्काले यदा विप्रस्य हृदि प्रकाशोजातस्तदायं
सुतपा विप्रोब्राह्मणस्तुरीयां ज्ञानभूमिङ्गतः ज्ञानस्वसत् भूमयो-
भवन्ति तत्तद्वर्णनं पातञ्जलियोगधृत्वे । तस्य सप्तधाप्रान्तभूमिः

१ अपहरण करना ३२ अवस्तु का हरण करना ३३ ब्राह्मणनिन्दा
३४ गुह्यनिन्दा ३५ वेदनिन्दा ३६ शास्त्रनिन्दा ३७ परनिन्दा
३८ अभक्ष्यभक्षण ३९ अभोज्यभोजन ४० अचोप्यचोषण
४१ अलेखलेहन ४२ अपेयपान ४३ अद्वैत को छूना ४४ जो
बात सुनने के योग्य नहीं वह सुनना ४५ जो हिंसा के योग्य नहीं
उसको हिंसन करना ४६ जिसकी स्तुति नहीं करना चाहिये उसकी
स्तुति करना ४७ जो अचिन्त्य है उसकी चिन्ता करना “ यहाँपर
अचिन्त्य शब्द का अर्थ परब्रह्म (जो शास्त्रों में लिखा है वह)
समझकर ईश्वर चिन्तन पाप है ऐसा न समझ लेना चाहिये
नहीं तो अर्थ का अनर्थ होजायगा शास्त्रों में ‘ अचिन्त्याव्यक्तरूपाय
निर्गुणाय गुणात्मने समस्तजगदाधारमूर्ते ये ब्रह्मणे नमः ’ इस
वाक्य में ब्रह्म को अचिन्त्य अव्यक्त निर्गुण गुणात्मा और समस्तजगत्
का आधार मानकर प्रणाम किया गया है इसलिये अचिन्त्य शब्द से
जिस बात के स्मरण करने से चित्त में प्रसन्नता हो वह ईश्वर बोधक
अचिन्त्य शब्द को छोड़ बाकी जगद् में जहाँ कि किसी बातको
स्मरण करने से चित्त में ग्लानि पैदा होती हो उस अचिन्त्य का
चिन्तन पाप समझना ” ४८ अयाज्य जो यज्ञ करने का अधिकारी
नहीं उससे यज्ञ कराना या जो यज्ञ नहीं करना चाहिये वह यज्ञ करना
४९ अपूज्य का पूजन करना ५० माता पिता का तिरस्कार करना
५१ स्त्री पुरुष के परस्पर की प्रीति को छुड़ाना भेद लगा देना ।

इति संस्तुयत स्तस्य विप्रस्य कलशोद्भव ॥

हृदि कोपि प्रकाशोऽभूद् ज्ञान ध्वांतनाशन ॥ २८ ॥

हे कलशोद्भव ! इति एवं संस्तुयत स्तुति कुर्वतस्तस्य विप्रस्य
हृदि हृदये अज्ञान ध्वांतनाशनः कोपिप्रकाशोऽभूत् । तीर्थराज
प्रसादत्त हृदयान्धक रोनेष्ट ॥ २८ ॥

हे अगस्त्य ! इस प्रकार स्तुति करता हुआ उस ब्राह्मण का हृदय
में अज्ञानरूपी अन्धकार को नाश करनेवाला एक प्रकाश उत्पन्न हुआ ॥ २८ ॥

संभव है और कितनों से बचना गृहस्थाश्रम महाश्रमम्भवे है
जिनका बोध नामावली देखने से स्वतः पाठक और श्रोताओं
को होजायगा अतः उनको पृथक् नहीं किया है ।

महापातकनामानि सोपपातकानि ।

महापातक तो पांच ही हैं १ ब्रह्महत्या २ मद्यपान ३ मुवर्ण की
चोरी ४ गुरुपत्नीगमन ५ इनके संसर्गी । और जितने १ धूत मधूत
का अविचार २ संकरी करण ३ मलिनी करण ४ अपात्री करण
५ जातिभ्रंशकरण ६ अविहितकार्य का करना ७ कर्म का तोर
करना ८ रसवेचना ९ कन्याविक्रय करना १० भ्रष्ट विक्रय
११ गोविक्रय १२ स्त्रिय विक्रय १३ उज्जू विक्रय १४ दासी विक्रय
१५ बकरे आदि पशुओं का विक्रय १६ अग्नि पर बैठना १७ नीली
विक्रय १८ तिस बन्धु को मारने की सामर्थ नहीं उसको बैठना
१९ सौदा धिमी तरह का बैठना २० जल में रहनेवाले जानवर का
विक्रय २१ स्थित जन्तु का विक्रय २२ आकाश में रहनेवाले जन्तु
का विक्रय २३ व्यर्थ वृक्ष का काटना २४ अणु का न देना २५ ब्रह्म
का हरण करना २६ देवत्व का हरण करना २७ राजत्व का हरण
करना २८ एन्द्र्य का अनदरण करना २९ तेज, धी आदि बन्धुओं
का अनदरण करना ३० कल चरना ३१ नोश आदि धनु

तदायं सुतपाधिप्रस्तुरीयज्ञानभूमितः ॥

हरयमानं जगज्जातं ददर्श हृदि चित्रवत् ॥ २६ ॥

तदा तस्मिन्काले यदा विप्रस्य हृदि प्रकाशोजातस्तदायं
सुतपा विप्रोब्राह्मणस्तुरीयां ज्ञानभूमिद्वतः ज्ञानस्यसत्त भूमयो-
भवन्ति तत्तद्वर्णनं पातञ्जलियोगध्वने । तस्य सप्तधाप्रान्तभूमिः

१ अपहरण करना ३२ अवस्तु का हरण करना ३३ ब्राह्मणनिन्दा
३४ गुल्लिनिन्दा ३५ वेदनिन्दा ३६ शास्त्रनिन्दा ३७ परनिन्दा
३८ अभक्ष्यभक्षण ३९ अभोज्यभोजन ४० अचोप्यचोषण
४१ अलेखलेहन ४२ अपेयपान ४३ अछूत को छूना ४४ जो
बात सुनने के योग्य नहीं वह सुनना ४५ जो हिंसा के योग्य नहीं
उसको हिंसन करना ४६ जिसकी स्तुति नहीं करना चाहिये उसकी
स्तुति करना ४७ जो अचिन्त्य है उसकी चिन्ता करना “यहांपर
अचिन्त्य शब्द का अर्थ परब्रह्म (जो शास्त्रों में लिखा है वह)
समझकर ईश्वर चिन्तन पाप है ऐसा न समझ लेना चाहिये
नहीं तो अर्थ का अनर्थ होजायगा शास्त्रों में ‘अचिन्त्याव्यक्तरूपाय
निर्गुणाय गुणात्मने समस्तजगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः’ इस
वाक्य में ब्रह्म को अचिन्त्य अव्यक्त निर्गुण गुणात्मा और समस्तजगत्
का आधार मानकर प्रणाम किया गया है इसलिये अचिन्त्य शब्द से
जिस बात के स्मरण करने से चित्त में प्रसन्नता हो वह ईश्वर बोधक
अचिन्त्य शब्द को छोड़ बाकी जगह में जहां कि किसी बातको
स्मरण करने से चित्त में ग्लानि पैदा होती हो उस अचिन्त्य का
चिन्तन पाप समझना” ४८ अयाज्य जो यज्ञ करने का अधिकारी
नहीं उससे यज्ञ कराना या जो यज्ञ नहीं करना चाहिये वह यज्ञ करना
४९ अपूज्य का पूजन करना ५० माता पिता का विरस्कार करना
५१ स्त्री पुरुष के परस्पर की प्रीति को सुझाना भेद

प्रज्ञा ॥ तस्य विवेकस्यातिरूपं हानोपायस्यप्रान्तभूमिता
 रूपांसी प्रज्ञा योगजगादात्कारूपिदो समप्रकाश । तपसा
 हेयन्तुःसम्भया परिज्ञातमतानमेवप्रतिमपिज्ञानव्यमित्येकाप्रज्ञा ।
 तथा विवेकस्यातिरूपं हानोपायोमयानिष्पादितानास्य निष्पा-
 दनमवशिष्यते तत्फलानुभवादिनि द्वितीया । तथा इव

५२ परस्त्री गमन ५३ बेदया गमन ५४ दासी गमन ५५ चारडालादि
 गमन ५६ अयोनि गमन ५७ रजस्रवला गमन ५८ परवादि गमन
 ५९ कूट साक्षी (भूठी गवाही) ६० पैशुन्यवाद (चुगली करना)
 ६१ झूठ बोलना ६२ श्लेच्छ संग्राहण ६३ ब्रह्म द्वेष ६४ ब्रह्मवृत्ति हरण
 ६५ वृत्ति छेदन वृत्तिच्छेदोद्दिष्टद्वयः (वृत्ति का छुड़ाना उसको बप
 करने के बराबर होता है) ६६ परवृत्ति को ले लेना ६७ मित्र को
 ठगना ६८ गुरु को ठगना ६९ स्वामी को ठगना ७० गर्भपात करना
 ७१ रास्ते चलते साम्बूल चानना ७२ हीन जाति की सेवा करना
 ७३ परान्न भोजन करना ७४ लमुन, कान्दा, गाजर और तालफल
 आदि फलों का भक्षण करना ७५ झूठा खाना ७६ मार्जारोच्छिष्ट
 खाना ७७ बासी अन्न खाना ७८ पंक्ति भेद करना ७९ भ्रूण हिंसा
 ८० पशु हिंसा ८१ बाल हिंसा ८२ और किसी भी प्रकार की हिंसा
 ८३ अपवित्र रहना ८४ स्नान नहीं करना ८५ सन्ध्या को त्याग
 करना ८६ अग्निहोत्र छोड़देना ८७ बलि वैश्वदेव को त्याग करदेना
 ८८ निषिद्ध आचरण करना ८९ कुआम में वास करना ९० ब्रह्मद्रोह
 ९१ गुरु द्रोह ९२ पितृ मातृ द्रोह ९३ पर द्रोह ९४ आत्मस्तुति
 ९५ दुष्टजन संसर्ग ९६ गौ की सवारी ९७ वृषभ की सवारी
 ९८ भैंसे की सवारी ९९ गधे की सवारी १०० ऊंट की सवारी
 १०१ बकरे की सवारी १०२ मृत्याभरण १०३ अपने आम को
 त्याग करना १०४ गोत्र त्याग करना १०५ कुल का त्याग करना ॥

इेनोऽविद्याकामकर्मादयोममारोपतः क्षीणाः । नतेपांश्चेतव्यमव-
शिष्यते इति तृतीया । तथा दुःख हानरूपमोषाख्यफलं तद्गोचराऽ-
सम्प्रज्ञातयोगेन साधारकृतं न पुरुषार्थस्यापिज्ञातव्यमवशिष्यत-
इति चतुर्थी प्रज्ञा । तदेतत्त्वस्यकृत्यसमाप्त्यनुभवरूपम्प्रज्ञाचतुष्टयम् ।

§ १०६ दूर से सलाह देना १०७ ब्राह्मणों की आशा भेदन करना
१०८ अपूज्य का आशीर्वाद लेना और १०९ पतित से बात चीत करना
इत्यादि उपपातक हैं । इन में व्यर्थ के मनोरथ बान्धना भी शामिल है ।
इन सब उपपातकों के नाश के विषय में कपिलसरोवर की स्तुति उस
ब्राह्मण देव ने की है । मनुना जातिभ्रंशकरसंक्षरीकरणापात्रो करण-
मलिनीकरणसंज्ञानि पातकानि परिगणितानि यथा ब्राह्मणस्य रूजः कृत्या
प्रातिरिप्रेयमद्योः । जैह्वं पुंसि च मैथुन्यं जाति भ्रंशकरं स्मृतम् । सराश्वो-
ष्मृगोभानामजाविकवधस्तथा ॥ संक्षरीकरणज्यैर्मीनाहिमहिपस्यच ॥
निन्दितेभ्यो धनादानं वारिण्यं शुद्रसेवनम् । अपात्रीकरणज्यैर्मसत्यस्य-
चभाषणम् ॥ कुमिकीटवयो हत्या मथानुगतभोजनम् । फलैधः कुसुम-
स्तेयमधैर्यं च मलावहम् इति ॥ महापातकं पुच स्वर्णस्तेयी, ब्राह्मण
सुवर्णस्तेयी, महापातकी भवति । सुरापान जो महापातक कहा गया है
वहां विचार है सुरा के ११ भेद हैं उन में मुख्य गौड़ी माध्वी और
पैछी ३ हैं इस में प्रथम पक्ष तो यह है कि निषिद्धसुरा का पान
नहीं करना तदनन्तर गौणी माध्वी और पैछी में पैछी का पान
महापातक है । अन्त में धर्मशास्त्रकारों का वचन है कि ब्राह्मण किसी
तरह के मद्य या सुरा का पान न करे और क्षत्रिय वंश्य यदि करे
तो महापातकी नहीं । इस प्रकार यहां साधारण विचार दिखाया है
विशेष धर्मशास्त्रों में वर्णित है । पांचवों जो संसर्गों है यह यदि
महापातकियों का लगातार वर्ष भर संसर्ग करे तो पातकी होता है वह
भी ज्ञानावस्था में । शेष जो उपपातकादि लघुपातकादि हैं उनका नाम
सहस्रही साधारण प्रायश्चित्त है कितने सन्ध्याचन्दन और गायत्री जप से
ही नष्ट होते हैं कितने श्रावण्यादि कर्मों द्वारा निवृत्त हो जाते हैं ॥

माविदिदेहकैयन्यकालीनावस्थानुमयरूपआन्यदयस्यावर्षं स्वयमे-
वाग्रे वक्ष्यतीति सप्त ज्ञानभूमयस्तत्र विप्रस्य कपिलमुनि प्रमादाज्ज्ञातं
हृत्प्रकाशं यदनंकामनबन्धप्राणायामप्रत्याहारादिनाभूमयस्मि-
दुध्यन्ति । तागु भूमिप्रगं जातप्रकाशमात्रेणैवामिदं ज्ञानम् लब्ध
प्रकाशं न तुरीयज्ञानभूमितो दृश्यमानं जगज्ज्ञानमर्थात्मनं जगद्दि-
चित्रवत्पश्यति ॥ २६ ॥

जब उस ब्राह्मण को कपिलमुनि की प्रसन्नता से एकाएक हृदय
में प्रकाश उत्पन्न होने से तुरीयावस्था आ गई तो वह तुरीया ज्ञान
भूमि में आकर समस्त जगत को अपने हृदय में ही देखने लगा था
पानंजलि योग सूत्र में ज्ञान की सात भूमि वर्णन की गई हैं जो यन
नियम के साथ क्रम से आसन बंध प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा
और समाधि द्वारा घोर परिश्रम करने पर योगियों को क्रम से प्राप्त
होती हैं जिनमें प्रथम भूमि यह है कि मैं ने दुःख को जान लिया अब
इसके विषय में कुछ नहीं जानना है उसको त्याग करना चाहिये ।
और मिथ्या ज्ञान वासना से रहित अन्तरात्मा को विवेकस्याति कहते हैं
या हानोपाय कहते हैं इसलिये मिथ्या वासना से रहित अन्तरात्मा
को कर लिया अब इसमें कुछ शेष नहीं है ऐसी स्थिति को दूसरी
ज्ञान भूमि कहते हैं । तथा त्याग करने के योग्य जो अविद्या काम
कर्म आदि इनके विशेष नाश होने को ज्ञान की तीसरी भूमि कहते हैं ।
और योगियों का पुरुष-साक्षात्कार-रूप मोक्षप्राप्ति पुरुषार्थ है इस पुरुषार्थ
का ज्ञान कर लिया अब इसके ज्ञान में कुछ शेष नहीं है इसको ज्ञान
की चौथी भूमि कहते हैं । इस तरह महापरिश्रम-साध्य और योगियों से
भी दुःप्राप्य चार भूमिका को जीतकर चतुर्थ भूमि से वह ब्राह्मण बाह्य
दृश्य पदार्थ को अपने हृदयपट खोलकर चित्रवत् देखने लगा । अब
शेष की तीन भूमिकाओं का वर्णन आगे के श्लोकों में करते हैं ॥ २८ ॥

सुप्तिवस्वप्नवैव कालेन कियता पुनः ॥

दृष्टादृश्यमभूदेतत्पंचमीभूमिकास्थितेः ॥ ३० ॥

एवं चतुर्ध्यां भूम्यां सर्वजगज्जातं हृदिभावयन् कियता
कालेनैवं कुर्वन् पंचमीभूमिमाश्रितः पातञ्जलियोगशूत्रे पंचमी-
लक्षणमुक्तं यथा समाप्त भोगाप वर्गमे बुद्धिर्भविष्यतीत्येवमाकारा
पञ्चमीभूमिः यद्गत्वा भोगापवर्गाभ्यामपि योगी निवृत्तो भवति ।
तत्रगतस्य विप्रस्यैतद्दृष्टयादृश्यं सर्वं सुप्तिवत्स्वप्नवच्चैवाभूत् ।
स्वप्नवदयंसंसारोजातः । सर्वमिध्या मयमभूत् ॥ ३० ॥

इस तरह जब चतुर्थी भूमि में प्राकर उस ब्राह्मण को सम्पूर्ण
जगत् हृदय में ही दीखते कुछ दिन बीत गये तो अब पांचवी
ज्ञान भूमि में प्रवेश किया जहां समस्त संसार के वास्तव दृश्य और
अदृश्य पदार्थ स्वप्न के ऐसे मालूम देने लगे और मन केवल परब्रह्म
में लीन होने लगा ॥ ३० ॥

पुनः पृष्टीमितः प्राज्ञः स्वतोदृश्यं न परयति ॥

परैरुत्थापितः क्वापि स्वप्नवद्दृश्यमीक्षते ॥ ३१ ॥

प्राज्ञः ज्ञानवान् स ब्राह्मणः पुनरितोर्पातपंचमीभूमिकातः
पृष्टीगतः अस्पालक्ष्यं पातञ्जलियोगशूत्रे । यथा बुद्धिरूपेण
परिख्यताः सत्त्वादयोगुणाः स्वकारणे सप्तमेऽप्यन्तीत्येवमाकारा
पृष्टी ज्ञानभूमिः । एवं सत्त्वादिष्वपिलयंगतेषु उन्मनीमाव-
प्राप्तः । स्वतः स्वदृष्टतोदृश्यं किमीपेन परयति सुषुप्ति माव-
प्राप्त इव क्वापि कस्मिँश्चित्कालेपि परैरन्यजनैरुत्थापित उद्बोधितः
स्वप्नवद्दृश्यमीक्षते परयति उद्बोध योगशास्त्रे समापि प्रकरणे ।
प्रपञ्चः स्वाशनिरवामः प्रपञ्चविषयग्रहः निरव्ययनिर्विकार-

रचलवोजयति योगिनाम् ॥ उच्छिन्नसर्वसंकल्पोनिः शेषशेषेष-
ष्टितः ॥ स्वावगम्योलयः कश्चिज्जायते वागगोचरः ॥ ३१ ॥

वह ब्राह्मण पंचमोभूमिका में कुछ दिन रह कर तब ज्ञान की छठी भूमि में आया और इस भूमि में अपनी आंखों से कुछ नहीं देखता था और सोए हुए मनुष्य के ऐसा दाखन लगा तथा जब दूसरे आकर जगाते थे तो दरयवस्तु को स्वप्नवत् देखता था । पातञ्जलि योग सूत्र में पाठी भूमिका का लक्षण यह कहा गया है कि जिस अवस्था में अविद्या रूप से परिणत सत्त्वादि गुण अपने २ कारण में लय हो जाते हैं उसको छठी भूमि कहते हैं । इस भूमि में योगी पूर्ण समाधि का अधिकारी हो जाता है और परब्रह्म में लीन होने लगता है जिसका लक्षण हठ योग में ऐसा लिखा है कि श्वास और प्रश्वास दोनों नष्ट हो जाते हैं अर्थात् इडा पिंगला दोनों नाड़ियां बन्द होजाती हैं और इन्द्रियों द्वारा विषयों को ग्रहण करने की शक्ति नष्ट हो जाती है साधक निश्चेष्ट अर्थात् निर्जीव सा और निर्विकार हो जाता है उस समय प्राण नाभी से कंठ तक सुषुम्णा की गति से चलता रहता है इसको लयावस्था कहते हैं इसमें सभी संकल्प विकल्प उच्छिन्न हो जाते हैं और एकाएक मूर्च्छा तो नहीं हो जाती परन्तु करवराणादि का व्यापार बन्द हो जाता है शरीर पर यदि कोई कीटादि चढ़ जाय या मच्छर और गन्धियां भी काट खायें तो इसका कुछ ज्ञान नहीं होता परन्तु अन्तरंगत सचेष्ट प्राण अमर रहता है इसको असंयतज्ञान समाधि कहते हैं इसका जाननेवाला बड़ा पुण्य होता है जो उस अवस्था को पंडुना है दूसरा नहीं जान सकता । जिसको दृष्टि देख नहीं सकती बाणी बर्तन नहीं कर सकती पैरों विलक्षण लय योगिनों को ही उपज होती है ॥ ३१ ॥

सप्तमी भूमिकां प्रातः पुनः पूर्यतपोबलात् ॥

चिदानन्दजलेलीनोदश्यन्नापश्यदेकदृक् ॥ ३२ ॥

पुनः पूर्यतपोबलात् सप्तमीन्भूमिकाम्प्राप्तस्व विप्रचिदा-
नन्दजले परब्रह्मैकरसेनिमग्न आत्मपरमात्मनोरेकी भावकृतः । तदैकदृ-
ग्भूत्वा परपन्नपिनापश्यत् ॥ इयं पूर्ण समाधिः । अत्र
पूर्णलयावस्थामवति तल्लक्षणम् । यत्र दृष्टिर्लयस्तत्र भूतेन्द्रिय
सनातनी ॥ साशक्तिर्जीवभूतानां द्वे अलक्ष्ये लयंगते ॥ समाधि-
स्तु यथा । सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भजति योगतस्तथात्ममन
सौरैक्यं समाधिरभिधीयते ॥ यदा संचयीते प्राणोमानसंच प्रली-
यते ॥ तदा समरसत्वंच समाधिरभिधीयते ॥ तत्समंच द्वयोरैक्यं
जीवात्मपरमात्मनोः । ग्रनष्टः सर्वसंकल्पः समाधिः सो मिधीयते ।
राजयोगस्य माहात्म्यं कोवा जानाति तत्त्वतः ॥ ज्ञानं मुक्तिः
स्थितिः सिद्धिर्गुरुवाक्येन लभ्यते ॥ दुर्लभोविषयत्यागो दुर्लभ-
न्तत्त्वदर्शनम् । दुर्लभासहजावस्था सद्गुरोः करुणाम्बिना ॥
अर्द्धोन्मीलितलोचनः स्थिरमनाः नासाग्रदत्तेक्षणश्चन्द्रार्कावपि ली-
नतामुपनयन्निष्पन्दभावेनयः ज्योतीरूपमशेषबीजमखिलन्देदीप्य-
मानम्परन्तत्त्वन्तत्पदमेतिवस्तु परमं वाच्यं किमत्राधिकम् ॥ इति-
हठयोगे । पातञ्जलियोगसूत्रेण सप्तमी भूमिकालक्षणं यथा-
प्रलीनानां तेषां न पुनर्बुद्धिरूपेणपरिणामोभविष्यतीत्येवमा-
कारा सप्तमी भूमिः एवं सप्तप्रकाराऽनुभवोयस्य विदुषोजायते
तस्य ज्ञाननिष्ठा सद्योमुक्तिरेति ज्ञातव्या ॥ ३२ ॥

इस तरह छठी भूमि को पार कर वह तपस्वी सातवीं योग
भूमि में आया और निरचल नेत्र से देखता भी था तो कुछ नहीं
समझता कि क्या देख रहा है । अपने पूर्ण तपो बल से परब्रह्म
रूपी जल में डूब गया अर्थात् पूर्ण लय भाव के साथ अशुभप्रज्ञात

भिन्न होगया पूर्ण तब का लक्षण योगशास्त्र में लिखा है
 शरीर के अन्दर मूलाधार व्याधिष्ठान नाभिचक्र हृदयस्थान कण्ठ-
 मूकुरी और सहस्रदल इन स्थानों में जहां कही परब्रह्म के
 में दृष्टि रहे वहां ही तब हो जाय और पृथिव्यादि पंचभूत
 आंख कान नाक इत्यादि पांचों कर्मेन्द्रियों के सनातन व्यापार
 में अविषा है एवं प्राणियों की जो वाक्प्राणियां हैं ये सब
 अदृष्ट परमात्मा में लय हो जायें इसको लय कहते हैं।
 जलि योग सूत्र में भी सप्तमी भूमिका का वर्णन इस तरह
 है कि जहां पर घटी भूमि में सत्त्वादि का लय हुवा है
 का बुद्धिरूप से फिर कुछ परिणाम न हो उसको सप्तमी भूमि
 है इस तरह सातों भूमिका का अनुभव जिस विद्वान को हो
 है उसकी ज्ञाननिष्ठा तत्काल मुक्ति देनेवाली होती है। समाधि
 लक्षण योगशास्त्र में लिखे हैं कि जैसे जल में नमक मिलकर
 हो जाता है फिर अलग नहीं हो सकता वैसे आत्मा और परमात्मा
 एकता हो तो उसको समाधि कहते हैं। जब प्राण और मन दोनों
 हो जाते हैं तब आत्मा परमात्मा का एकरस होता है उसको
 समाधि कहते हैं। जब जीवात्मा परमात्मा की एकता होती है तब सब
 रूप विकल्प नष्ट हो जाते हैं उसको समाधि कहते हैं। हठ योग
 केवल प्राण को जीतना होता है और उससे कोई काम नहीं चलता
 तने आसन मुद्रा नेति धौती वस्ती कापालकिया नौली और विविध
 प्राण के प्राणायाम की सिद्धि प्रत्याहार ध्यान धारणा इत्यादि हैं ये
 प्राण जो इड़ा पिंगला नाडी हैं इनको जीतने के लिये है इनके
 तने पर राजयोग आरंभ होता है समाधि के अधिकारी हठयोगी
 प्राणायामादि साधन द्वारा हो जाता है, परन्तु राजयोग के बिना सब
 फल है। एक कलाबाजों के खेल के ऐसा है। वह परिश्रम राज योग के
 सफल होता है इसलिये साधक राजयोग का अभ्यास भी साथ

ही आरंभ करते हैं राजयोग के बिना लया वस्था नहीं होती जीवात्मा परमात्मा की एकता नहीं होती तो भी कोई २ भाग्यवान हठयोग बिना ही राजयोगकी सिद्धि अपने पूर्वपुरुषों के बलसे पा लेते हैं जैसे इस ब्राह्मणने पाया है राजयोग का वर्णन योग शास्त्र में किया गया है कि राजयोग के माहात्म्य को यथार्थरूप से कोई नहीं जानता ज्ञान मुक्ति, स्थिति और सिद्धि गुरुवाक्य से प्राप्त जो राजयोग उसी से होती है इस राजयोग के लिये तीन वस्तु अलभ्य हैं एक तो विषय का त्याग करना, दूसरा तत्वों का दर्शन तथा तीसरा सहजावस्था तुरीयावस्था अर्थात् योग की चतुर्थभूमि, ये तीनों, पदार्थ गुरु की कृपा बिना नहीं मिलते, तुरीयावस्था के बाद निजशक्ति द्वारा भी काम चल जाता है इस तपस्वी को भी तुरीयावस्था तक आने के लिये सांख्यार्च्य कपिलमुनि को ही ध्यानस्थ गुरु बनाना पड़ा था इति ॥ और समाधिस्थ योगी का रूप ऐसा होता है। जो योगी परमसमाधिगत होता है उसकी दृष्टि नासिका के आगे १२ अंगुल पर आकाश में स्थिर रहती है और सूर्य चन्द्र से मतलब इडा पिंगला से है इन दोनों नाडियों के व्यापार को लय करके निष्पन्द भाव से अर्थात् निश्चल रूप से अपना सिद्ध किया हुआ आसन से बैठा रहता है ऐसी अवस्था में जब काष्ठ या पाषाण सदृश स्थिर हो जाता है तब सम्पूर्ण संसार के आदि बीज पूर्ण सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा के ज्योतिरूप जो चमकता हुआ तत्त्व है उस पद को देखता है वशिष्ठजी ने कहा है कि अब इससे अधिक क्या कह सका हूँ जब परम तत्त्व का दर्शन हो गया तो अब इसके बाद कुछ बाकी ही नहीं है ॥ ३२ ॥

यानिशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ॥

यस्यां जागर्ति भूतानि सानिशा पश्यतोन्मुनेः ॥३३॥

जो निरा अर्थात् यानिरा अविद्यारूप रात्रि है जिसमें तमाम जगत् सोया हुआ रहता है उसमें इन्द्रिय-निग्रहकारी माहात्मा जागते हैं अर्थात् अविद्या का नाश करके परब्रह्म की चिन्तना करते हैं । और जिसमें सब जगत् जागता है उस शुब्दादि विपरूप रात्रि में योगिन सोते हैं अर्थात् यह उनकी रात्रि है ॥ ३३ ॥

देहंच नश्वरमवस्थितमुत्थितंवा
सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ।
दैवादुपेतमथदैवचशादपेत-

म्वासोयथा परिधूनं मदिरामदान्धः ॥ ३४ ॥

जो माहात्मा परब्रह्म को साक्षात्कार कर चुके हैं वे यह नाशवान् शरीर रहे या न रहे इसको नहीं देखते । जैसे मदिरा के मद से कोई व्यक्ति अपने पड़ने हुए दस को नहीं जानता कि उसके शरीर पर है या नहीं ॥ ३४ ॥

इति संज्ञात विज्ञानं मद्रदेशोन्नवं द्विजम् ॥

दृष्ट्वा मनोनयस्थावान् संज्ञातः कपिलोमुनिः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार पार तपस्या से विज्ञान प्राप्त किया हुआ उा मद्रदेशी ब्राह्मण को देख कपिलमुनि के मन की अनवस्था हो गई अर्थात् अब इनके साथ क्या करना चाहिये इस विचार से चित्त चंचल हो गया ॥ ३५ ॥

स्थानादुत्थाय गच्छन्तं शनैर्मौलिनसोद्यनम् ॥

यत्नं मयः प्रवृत्तेय गौस्तमन्यत्रजद्वरिः ॥ ३६ ॥

मौलिनसोद्यनं ध्यानावस्थं मस्थानादुत्थाय शनैर्मौलिन-
मनुवन्मं मयः प्रवृत्ता गौस्तमन्यत्रजद्वरिः कनिष्ठमन्यत्रज-
मनुषावनं यत्र कनिष्ठमन्यत्रज इत्येवमवावृत्तिरित्यत्र
कनिष्ठमन्यत्रज इति ॥ ३६ ॥

नामिहाम दृष्टि को किये हुए अपने स्थान से उठकर धीरे धीरे जाने हुए उम ब्रह्मण को देख भगवान् कपिलजी ने नयमगूना गी बैसे अपने बघे के पीछे पीछे चलती है वैसे पीछे २ चलने लगे ॥ ३६ ॥

निमोक्षतप्रदेशेषु गच्छन्तं तं यदच्छया ॥

धायं धायं द्विजस्याग्रे स समं देशमानयत् ॥ ३७ ॥

जब अपनी इच्छा से परिभ्रमण करता हुआ वह ब्राह्मण कहीं नीचे सट्टे की तरफ जा पड़ता था या कहीं ऊंची जगह पर चढ़ने लगता था तो उसके आगे दौड़ दौड़ कर उसका हाथ पकड़ परावर जमीन पर लाते थे क्योंकि अपने ध्यान में निमग्न वह ब्राह्मण आगे कुछा हो या पड़ाव सीधाही चलता था और आंखें ईश्वर को ही देखने में लगी रहती थी उससे संसारी काम तो लेता था ही नहीं इसलिये भक्तदत्तसल भगवान् को उसे संभालना पड़ता था ॥ ३७ ॥

भुञ्जानं कापि तं विप्रं सदा मीलितलोचनम् ॥

मक्षिकारक्षणं कुर्वन् भोजयामास भृत्यवत् ॥ ३८ ॥

भगवान् भक्तों के खरीदे हुए दास हैं जो ईश्वर के सच्चे दास बनजाते हैं वे वास्तव में ईश्वर बनते हैं दास तो ईश्वर को ही बनना पड़ता है अब यहां ही देखिये जब कभी वह ब्राह्मण आंखों को बन्द किये हुये भोजन करने बैठता था तो भगवान् दासों की तरह उसकी थाली से मक्खियों को हटाते हुए भोजन कराते थे ॥ ३८ ॥

पानीयं पिवतः कापि तन्निष्ठं यत्तृणादिकम् ॥

प्रहृत्य दूरीकृते हरिः सद्ब्रह्मणः स्वयम् ॥ ३९ ॥

कभी पानी पीने लगता था तो जलपात्र में कोई घास फूस पड़ जाता था उसको निकालकर दूर करते थे क्योंकि भगवान्

मक्तवत्सल हैं और जिसकी इतनी सावधानी से सेवा कर
वह जानता भी नहीं कि मेरे सामने कौन है ? क्योंकि
आँखें तो बन्द होकर और ही कुछ देख रही हैं इतना अवकाश
कि इनको पहचाने। हजार सेवा करते रहें वह अपने ध्ये
गम समझता क्या है ! वेतन तो पहले ही चुका दिया है ॥ ३९ ॥

कदाचित्तिष्ठतिकापि सन्तुनिः स्वस्थमानसः ॥

परमात्मारमाकान्तास्तदा पिश्रमने मनाक् ॥ ४० ॥

जब वह मुनि कभी किसी जगह परमात्मा का ध्यान करता
स्वस्थ होकर बैठता था तो भगवान् रमाकान्त भी थोड़ा गि
करते-ते भी नौकरी साधारण नहीं थी दिनरात पहना देना था नौ
पट्टही थी अगर ऐसा ही दो बार भगवान् और होते तो कुल प
की नौकरी करने के बाद विधाम होता ऐसा विज्ञ और नौकर मिल
कठिन था ॥ ४० ॥

एवं गृतः सविश्रायो निर्ममो निरहं गृतिः ॥

ग्रामगृतः ज्यनः काले गंगदौ स्वकलेपरम् ॥ ४१ ॥

अब भगवान् को कुछ दिन के लिये अवकाश मिला क्योंकि इ
साह जाने मत को करना हुआ निर्मम और निरहं गति गति
मेह इस ने ध्यान जाने जाने भयं परमम होकर काल-ग्राम होने
पर जाने गति को गति कर दिया ॥ ४१ ॥

नामस्ते विहायैष्ट गथा गायत्रिणां नदी ॥

नामस्ते विहायैष्ट गथा गायत्रिणां नदी ॥ ४२ ॥

जैसे गति जाना जब गति है ॥ समुद्र ने निरह गति
कर गति है जैसे वह गति भी जाना गति कर है ॥ ४२ ॥ गायत्रिणां
नदी गति गति गति गति गति गति गति गति ॥ ४२ ॥

तदेहं स्वशृगालाया भक्षयामा सुरोजसाः ॥

ते प्रापुरुत्तमं जन्म विमुक्ताः पापयोनितः ॥ ४३ ॥

उसके मृत देह को कुत्ते शृगाल गृध्र काकादि नर मांसभक्षी गानवर खा गये और इस पवित्र मांस को खाने से वे भी पापयोनि से मुक्त होकर उत्तम जन्म पा गये ॥ ४३ ॥

विमानयानस्सद्गच्छन् गोकर्णशिखदर्शने ॥

उल्लसद्द्युतदस्थीनि कदाचिदलकापतिः ॥ ४४ ॥

उस ब्राह्मण के देहावसानानन्तर किसी समय अलकापति कुबेर अपने पुष्पकविमान पर बैठे हुए गोकर्णनाथ महादेव का दर्शन करने को आकाशमार्ग से जा रहे थे सो मार्ग में उस ब्राह्मण के देह की हड्डियां पड़ी थीं उसको उल्लंघन करदिया ॥ ४४ ॥

सविमानः पपाताशु पृथिव्यां नरवाहनः ॥

तदस्थिलंघनोद्भूतदोषादुत्तमदैवतम् ॥ ४५ ॥

कुबेर का वाहन पालकी भी है जिसको नरवाहन कहते हैं इसलिये यह विशेषण कुबेर का है। नरवाहन कुबेर उस अस्थि को लंघन करने के दोष से विमानसहित उसी समय पृथ्वी पर गिरगये क्योंकि यह अस्थि उत्तम दैवत भी अर्थात् एक परमतपस्वी की थी ॥ ४५ ॥

पतितश्चिन्तयामास तदापतनकारणम् ॥

पतनं येन संजातं तत्स्वर्पनायबुद्धयान् ॥ ४६ ॥

जब कुबेर विमान के साथ जमीन पर आगये तो अपने गिरने का कारण सोचने लगे परन्तु जिस कारण से गिरे थे सो नहीं जान सके ॥ ४६ ॥

१४९१

र
क
एक
की
कठि

एक
मह

तरह क
अष्ट मह
पर अपने

नामरु
नामरु

जैसे :

बनजाती है
जो प्राप्त हुआ

सरोवर में डाला । और मांस खानेवाले जानवरों ने अपनी पापयोगि से मुक्त होकर उत्तम जन्म पाया ॥ ५० ॥

गत्वा गोकर्णनिकटं दृष्ट्वा तच्चरणद्वयम् ॥

सर्वं घृत्तांतजातं स शंभुं पप्रच्छ विस्मयात् ॥ ५१ ॥

कुबेर ने गोकर्णनाथ के निकट जा उनके चरणों को वन्दना कर रास्ते की सब कथा आश्चर्य के साथ भगवान् शंकरजी से कही और इसका कारण पूछा ॥ ५१ ॥

शंभु स्तस्मै यथावृत्तं कथयामास विस्तरात् ॥

सोऽपि श्रुत्वा मुदा युक्तध्याययौ स्वालयं पुनः ॥ ५२ ॥

भगवान् शंभुदेव ने उस तीर्थ की और तपस्वी ब्राह्मण की सब कथा कह सुनाई सुनकर बड़े हर्ष के साथ अलकाधिपति अपने भवन को आये ॥ ५२ ॥

आगच्छत् स्वर्गं देवः सस्नौ तस्मिन्सरोवरे ॥

स्नात माघस्य तत्राशु कुष्ठं नष्टममूत्क्षणात् ॥ ५३ ॥

कुबेरदेव ने भी अपने घर को आते हुये उस सरोवरे में स्नान किया और स्नान करने के साथ ही बहुत दिनों से उनके शरीर में लगी हुई कुष्ठव्याधि भी तो नष्ट हो गई और दिव्य देह हो गया ॥ ५३ ॥

इयं पंचेतिहासी मे पंचानानमुष्वाच्छुना ॥

प्रतिपद्ये कथिता तुभ्यं स्वकीयैः पंचभिर्मुनैः ॥ ५४ ॥

ये पांच इतिहास तो संसृजत कथा मैं ने अपने पिता पंचानन शिवजी के पांचों मुनों से सुनी थीं तो तुम्हारी प्रति के कारण तुमसे कही है ॥ ५४ ॥

यां श्रुत्वा श्रद्धया धीरो न गोषाति कृतार्थताम् ॥
किंपुनः सेवमानः सन् सदासिद्धः सरोवरः ॥ ५५ ॥

जिस कथा को बुद्धिमान मनुष्य श्रद्धापूर्वक सुनकर ही कृतार्थ होजाते हैं उस सिद्ध सरोवर का यदि सदा सेवन किया जाय तो फिर क्या !
अर्थात् सब मनोरथ सफल होजायें ॥ ५५ ॥

अथ यदपि ते मर्त्यैः स्वल्पतन्मेन्ताम्रजेत् ॥
अथ यत्क्रियते किञ्चित्तादक्ष्यफलं भवेत् ॥ ५६ ॥

भगवान् स्कन्ददेव की कथा अगस्त्य ऋषि के प्रति समाप्त हुई ।
अब सूतजी गौनकादिकों से ग्रन्थोपसंहार में कहते हैं कि इस तीर्थ में
रेणु तुल्य भी दान किया जाय तो मेरु के समान होता है और यहां
जो तपस्यादि किये जाते हैं उनके अक्षय फल होते हैं ॥ ५६ ॥

कृत्वा ताम्रतुलामत्र दद्याद्रत्नतुलाफलम् ॥
अत्र समान्यधेनोर्यद्दानं प्रकुर्वते सुधीः ॥ ५७ ॥
फलंतूभयतो मुख्यास्तस्यस्या दाशुनिश्चितम् ॥
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजितः ॥ ५८ ॥

इस तीर्थ में यदि ताम्रतुला का दान किया जाय तो रत्न के तुलादा
का फल हो और यदि साधारण गौदान करे तो उभय मुसी गौदा
करने का फल निश्चयपूर्वक और तत्काल ही मिले । तथा इस ती
र्थ में एक ब्राह्मण को भोजन कराया जाय तो कोटि ब्राह्मणों के भोज
कराने का फल होता है ॥ ५७, ५८ ॥

एवं सर्वमपि स्वल्पं भूरी भवति भेदतः ॥
यस्य यस्येह देवस्य प्रासादं कारयेत्सुधीः ॥ ५९ ॥
तस्य तस्यैव देवस्य समानत्वं सञ्जाप्नुयात् ॥

इसी प्रकार सभी दान व्रत आदि थोड़ा भी यहां किया जाय तो तीर्थ के प्रबल माहात्म्य के बर बहूत होजाते है और विचारवान् मनुष्य यहां पर जिस जिस देवता के मन्दिर बनवाते हैं वह उसी उसी देवता की समानता को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ५९ ॥

शिलाभिः सेतुबन्धं यः कारयेद्धनवान्नरः ॥

तत्तीर्थतुल्यमाहात्म्योजायते सधुर्वमुवि ॥ ६० ॥

जो धनी पुरुष इस तीर्थ में प्रस्तर के शिलाओं से सेतु बन्धावे और सरोवर में सुख से स्नान करने वास्ते पाट बनवावे वह पृथ्वी में निश्चय रूप से तीर्थ के बराबर पूज्य हो जाता है ॥ ६० ॥

इति ते सर्वमाख्यातं मया शौनक पावनम् ॥

तीर्थ रत्नस्य माहात्म्यं यतोनास्तिवरंपरम् ॥ ६१ ॥

हे शौनक ! यह पवित्र तीर्थमाहात्म्य मैंने तुम से कहा है । इसके उपरान्त इससे श्रेष्ठ और किसी तीर्थ के माहात्म्य नहीं है ॥ ६१ ॥

इति कार्तिककापिलेयोर्महिमानं महनीयभाषितम् ॥

प्रदहेदिह पातकं क्षणाच्छृणुने आचर्यतेच भक्तिः ॥ ६२ ॥

यह कार्तिक मास और कापिलेय तीर्थ की महिमा पूज्य जनों की कही हुई है जो मनुष्य भक्ति पूर्वक सुनता है और सुनाता है वह क्षण मात्र में अपने पातकों को जला देता है ॥ ६२ ॥

इति भीष्कन्दपुराणे स्कन्दागस्त्यसम्भादे कपिलायतनमाहात्म्ये धर्ममोक्षं नाम अष्टमोऽध्यायः ।



